5451

डॉ. अमर जीत सिंह

विकेन्द्रीकृत नियोजन एवं सहभागी विकास

विकेन्द्रीकृत नियोजन एवं सहभागी विकास

डॉ. अमरजीत सिंह
प्रवक्ता
राजनीति विज्ञान
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय
चित्रकूट, सतना (म.प्र.)

मधुकर प्रकाशन, आगरा

प्रकाशक : मधुकर प्रकाशन
28, मंगलम् बिहार, सिकन्दरा-बोदला रोड,
आगरा-282007
फोन-0562-6534747, 9319176095

द्वितीय संस्करण : 2007
मूल्य : 300 रु०

भारत में मुद्रित

मधुकर प्रकाशन, 28, मंगलम् बिहार, सिकन्दरा-बोदला रोड, आगरा-282007 द्वारा प्रकाशित एवं राजपूत कम्प्यूटर, सेक्टर-4/216, बोदला, आगरा तथा एन.सी. प्रिंटर्स, आगरा द्वारा मुद्रित।

आमुख

राजनीति से लोकनीति एवं सत्ता का विकेन्द्रीकरण– इन दिशाओं में मध्य प्रदेश ने महत्वपूर्ण पहल किया है। गाँधी जी की कल्पना के अनुसार ग्राम स्वराज की स्थापना के लिये प्रदेश के मुख्यमंत्री माननीय दिग्विजय सिंह ने जो संकल्प किया उसके अन्दर छिपी हुई इच्छा यह थी कि ग्राम के लोग अपनी समस्याओं को चिन्हित करें, अपने संसाधनों को समझें और खुद अपना नियोजन करना सीख लें। इस प्रकार 'दिल्ली से मोहल्ले तक' नियोजन कार्य को लाने का यह प्रयास ऐतिहासिक महत्व रखता है। गौरव की बात है कि ग्रामोदय विश्वविद्यालय–जिसने ग्राम स्वराज को अपना केन्द्र बिन्दु बना रखा है– ग्राम स्वराज व्यवस्था के विकास के हर कदम पर उसे योगदान देने का मौका मिला। ग्रामोदय विश्वविद्यालय के शिक्षक गण अभिनव ढंग से ग्राम स्वराज के बुनियादी सिद्धांतों को पाठ्यक्रम का रूप देने में अद्भुत प्रयास किये हैं– भले ही वह दूरवर्ती पाठ्यक्रम की रचना द्वारा हो, इलैक्ट्रानिक मीडिया एवं लोक माध्यम आधारित सामग्रियों के श्रृजन में हो।

इसी श्रृंखला में डॉ. अमरजीत सिंह की किताब "विकेन्द्रीकृत नियोजन एवं सहभागी विकास" आती है। डॉ. अमरजीत सिंह जिन्होंने अपने पी.एच.डी. शोध के कार्यकाल से लेकर करीब दो दशक पंचायतीराज पर गहरे शोध किये हैं–इस जटिल विषय को आम जनता के लिये शिथिल बनाया है और उदाहरण के साथ मध्य प्रदेश के परिप्रेक्ष्य में पेश किया है।

मध्य प्रदेश में पंचायतें जोकि ग्राम गणराज्य की इकाईयाँ हैं तथा जिनके द्वारा प्रत्यक्ष लोकतन्त्र स्थापित किया गया है, के द्वारा ग्रामीण विकास को गतिशील बनाने के लिए माननीय मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में गठित टास्क फोर्स के सदस्य के रूप में यह समस्या बार-बार आती रही कि ग्राम स्वराज की स्थापना ग्राम सभाओं को सक्रिय किए बगैर तथा उनके द्वारा ही अपनी समस्याओं की पहिचान एवं उनका समाधान ढूंढे बगैर सम्भव नहीं है। प्रस्तुत पुस्तक उसी दिशा में किया गया एक ऐसा प्रयास है जिसमें लेखक ने सरल एवं बोधगम्य शैली में योजना का तात्पर्य, योजना निर्माण के तरीके, योजना निर्माण के प्रकार,, विकेन्द्रीकत नियोजन एवं बहुस्तरीय नियोजन को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इसके साथ ही साथ पुस्तक में सहभागी विकास की प्रक्रिया एवं स्वयं सेवी संस्थाओं तथा ग्रामीण विकास से जुड़े कार्यकर्ताओं के द्वारा वर्तमान में प्रयोग की जा रही सहभागी ग्रामीण समीक्षा पद्धति को व्यवहारिक रूप से समझाने का प्रयास किया है।

आशा है महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय के छात्र एवं शिक्षक गण के अलावा ग्राम स्वराज से सम्बन्धित समस्त जनप्रतिनिधियों, शासकीय अधिकारी एवं कर्मचारियों एवं स्वंय सेवी संगठन के कार्यकर्ताओं के लिये यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी।

श्री बी. एस. शर्मा जी (प्रकाशक) जिन्होंने "विकास एवं ग्राम स्वराज" पर एक महत्वपूर्ण श्रृंखला का शुभारंभ किया है, बधाई के पात्र हैं।।

–टी. करुणाकरन

उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ्यक्रम के अध्ययन से निम्नांकित तथ्यों को समझने में सहायता प्राप्त होगी।

- ☆ नियोजन क्या है ?
- ☆ केन्द्रीकृत नियोजन क्या है ?
- ☆ विकेन्द्रीकृत नियोजन क्या है ?
- ☆ सहभागी विकास क्या है ?
- ☆ सूक्ष्म स्तरीय नियोजन क्या है ?
- ☆ पी. आर. ए. पद्धति से सूक्ष्मस्तरीय नियोजन कैसे किया जाता है ?
- ☆ विकेन्द्रित नियोजन के संवैधानिक प्रावधान क्या हैं ?
- ☆ म. प्र. में विकेन्द्रित नियोजन की प्रक्रिया क्या है ?
- ☆ "जिला सरकार" की स्थापना से नियोजन की दिशा में क्या सफलतायें प्राप्त हुई हैं ?
- ☆ भारत में विकेन्द्रीकरण के लिए की गई संस्थात्मक व्यवस्था क्या है?
- ☆ मध्य प्रदेश में पंचायती राज की प्रगति के लिए कौन-कौन से कदम उठाये गए हैं ?
- ☆ ग्राम स्वराज अधिनियम के प्रावधान क्या हैं ?

प्रस्तावना

भारत में प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण को पंचायतीराज के रूप में मान्यता प्रदान किया गया है। 73वें एवं 74वें संविधान संशोधन के द्वारा विकेन्द्रीकृत नियोजन की प्रक्रिया को गति प्रदान किया गया है। विकेन्द्रीकरण वर्तमान समय में समस्त विश्व के विकासशील देशों की आवश्यकता के रूप में उभर कर आया है। विकेन्द्रीकृत नियोजन एवं सहभागी विकास को सतत् विकास का अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। भारत में विकेन्द्रीकृत नियोजन का विकल्प न होकर केन्द्रीकृत नियोजन के सहायक के रूप में प्रस्तुत हुआ है।

इस प्रकार विकेन्द्रीकृत नियोजन जिसे बहुस्तरीय नियोजन भी कहा जाता है, के द्वारा केन्द्र सरकार अपने कुछ राजनीतिक, वित्तीय एवं प्रशासनिक उत्तरदायित्वों एवं शक्तियों को निम्न स्तर को सौंप देती है। प्रस्तुत पुस्तिका में केरल, कर्नाटक एवं पश्चिम बंगाल के विकेन्द्रीकृत नियोजन एवं सहभागी विकास के अनुभवों को प्रस्तुत करके पाठ्य सामग्री को विशेष रूप से उपयोगी बनाने का प्रयास किया गया है।

विकेन्द्रीकृत नियोजन की सफलता सूक्ष्म स्तरीय नियोजन पर निर्भर करती है। सूक्ष्म स्तरीय नियोजन के लिये वर्तमान समय में सहभागी ग्रामीण समीक्षा (पी.आर.ए.) पद्धति में काफी सहायक सिद्ध हुई है। प्रस्तुत पुस्तिका में सूक्ष्म स्तरीय नियोजन के साथ ही साथ सहभागी ग्रामीण समीक्षा की विभिन्न पद्धतियों को बताने का प्रयास किया गया है।

विकेन्द्रीकृत नियोजन की दिशा में श्री दिग्विजय सिंह मुख्यमंत्री मध्य प्रदेश के द्वारा एक सफल प्रयास के रूप में जिला सरकार की स्थापना किया गया है। प्रस्तुत पुस्तिका में मध्य प्रदेश में जिला सरकार की स्थापना एवं शक्तियों तथा दायित्वों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करके विषय सामग्री को विशेष उपयोगी बनाने का प्रयास किया गया है।

विकेन्द्रीकृत नियोजन को ग्राम स्तर पर क्रियान्वित करने के लिये मुख्य रूप से ग्राम सभा, स्वयंसेवी संस्थाऐं, सहकारी समितियाँ एवं सहकारी बैंक तथा स्वयं सहायता समूह विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध हुये हैं। राजस्थान

की एक महिला स्वयं सहायता समूह ने अपने आत्मनिर्भरता एवं ग्रामीण सशक्तिकरण के प्रयासों का सफल परिचय देते हुये अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन को भी ऋण प्रदान करने का प्रस्ताव दिया। इसी प्रकार केरल एवं पश्चिम बंगाल की कुछ ग्राम सभाओं ने सफलता पूर्वक सूक्ष्म स्तरीय नियोजन की प्रक्रिया को लागू करके भ्रष्टाचार जैसी समस्याओं को भी कम करने में सफलता प्राप्त किया है। प्रस्तुत पुस्तक में ग्राम सभा, स्वयं सहायता समूह, सहकारी समितियाँ एवं सहकारी बैंक तथा स्वयं सेवी संस्थाओं के संदर्भ में भी विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

मध्य प्रदेश में 26 जनवरी, 2001 से ग्राम स्वराज व्यवस्था लागू की जा चुकी है। इस व्यवस्था के अंतर्गत गाँव के विकास के लिए कार्य करने की जिम्मेदारी एवं शक्तियाँ ग्राम सभा को सौंपी गई हैं। इस नई व्यवस्था में सत्ता लोगों को सौंपी जा सकी है, ताकि वे खुद अपने पैरों पर खड़े हो सकें। प्रस्तुत पुस्तक में इस बात का विश्लेषण भी करने का प्रयास किया जा रहा है कि मध्य प्रदेश सरकार पंचायती राज एवं ग्राम स्वराज अधिनियम के किन प्रावधानों के द्वारा शासन की बागडोर जनता के हाथों में सौंप रही है।

इस प्रकार यह पुस्तक बी. ए. विकास प्रशासन, एम. ए. विकास प्रशासन, डिप्लोमा पंचायतीराज (दूरवर्ती) एम. बी. ए. तथा अन्य ऐसे ही पाठ्क्रमों के लिये विशेष उपयोगी साबित होगी।

डॉ0 अमरजीत सिंह

विभागाध्यक्ष पंचायतीराज विभाग

अनुक्रमणिका

1

नियोजन : अर्थ, परिभाषा एवं प्रकार

आधुनिक युग, तीव्र प्रतियोगिता, वैज्ञानिक प्रगति एवं विकास के लहराते यौवन, नित नए आविष्कार एवं अनुसंधान का ऐसा युग है, जिसमें जीवन का हर क्षण प्रत्येक चरण एवं प्रत्येक दिशा नियोजित है। विश्व का जो परिवर्तित स्वरूप मानव का विकराल आनन प्रस्तुत कर रहा है, वह नियोजन का वरदान है। विश्व की आर्थिक व्यवस्था की धमनियों में अर्थ नहीं नियोजन प्रवाहित है। वास्तव में प्रकृति स्वयं इतनी नियोजित है कि मनीषियों एवं विद्धानों ने आकिंचन– सी प्राकृतिक अनियंत्रितता, जैसे– तूफान एवं भूकम्प इत्यादि को भी प्रलय की संज्ञा दी है। मानव नियोजित व्यवस्था को अपने जीवन का अंग बनाकर के प्रकृति पर नियंत्रण का प्रयास करता है। यही कारण है कि वर्तमान समय में जीवन का कोई ऐसा पहलू अछूता नहीं है जिसे नियोजन ने प्रभावित न किया हो।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप परम्परागत अर्द्धविकसित तथा आर्थिक जड़ता युक्त रहा है। ब्रिटिश शासकों की भेदपूर्ण आर्थिक नीति तथा औपनिवेशिक शोषण की प्रवृति के फलस्वरूप भारत का आर्थिक विकास लगभग रुका रहा तथा उस समय देश में सामाजिक समस्यायों के उत्पन्न होने के कारण अर्थव्यवस्था एकदम विपन्न एवं संकटग्रस्त बनी रही। जब भारत को राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त हुई उस समय देश में दरिद्रता, आर्थिक पिछड़ापन, निम्न आय एवं निम्न उपयोग स्तर इत्यादि ज्वलंत समस्यायें थीं। इस प्रकार स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत शासन का गुरुतर दायित्व, आर्थिक संकट की गंभीर स्थिति से अर्थव्यवस्था को मुक्त कर विकास के पथ पर अग्रसारित करना था, जो निश्चय ही एक जटिल कार्य था। किन्तु समस्त सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक बाधाओं पर विजय प्राप्त करने के लिये भारत सरकार ने आर्थिक नियोजन को ही अपनाना श्रेयस्कर समझा। व्यवस्थित नियोजन का ही यह परिणाम है कि सीमित साधनों के बल पर देश के आर्थिक विकास को गति प्रदान की जा सकी है।

नियोजन : अर्थ एवं परिभाषा

सामान्यतः नियोजन का अर्थ है, "किसी कार्य के लिये व्यवस्थित तैयारी"। अर्थात् उचित ढंग से सोच-विचार कर पग उठाना तथा सावधानीपूर्वक यह तय करना कि क्या कार्य किया जाय और कैसे किया जाय? फेयोल के अनुसार नियोजन का अभिप्राय है, 'पूर्व दृष्टि' यानि आगे की ओर देखना ताकि यह स्पष्ट पता चल जाये कि क्या काम किया जा रहा है ? इस प्रकार नियोजन के अंतर्गत कार्य समाप्ति के पश्चात् भूलसुधार की अपेक्षा कार्य करने के पूर्व ही कुछ न कुछ तैयारी की जाती है, जिससे कार्य को इच्छित परिणामों की दिशा में संचालन, दोहराव की समाप्ति के द्वारा क्रियाओं के मध्य समन्वय इत्यादि का मार्ग प्रशस्त करना तथा निश्चत उद्देश्यों की प्राप्ति का प्रयास किया जाता है।

नियोजन की परिभाषा विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से दी है, जिनमें से कुछ निम्नांकित हैं –

1. किपरन एवं प्रेस्थस : "यह एक ऐसी विवेकपूर्ण प्रक्रिया है जो सभी मानव व्यवहारों में पायी जाती है।"
2. सेक्लर हडसन : "भावी कार्य के मार्ग के लिये आधार की रूपरेखा बनाने की प्रक्रिया है।"
3. मिलेट : "प्रशासकीय प्रयत्न के उद्देश्यों को निश्चित करने तथा उनको प्राप्त करने के लिये उपयुक्त साधनों की प्रकल्पना करने वाली प्रक्रिया ही नियोजन है।"
4. डिमॉक : "नियोजन मूलरूप से एक बौद्धिक प्रक्रिया है, जिसमें निर्णय किये जाते हैं। यह एक मानसिक कार्य है, जिसे प्रत्येक प्रबंधक नहीं कर सकता, जिसमें आवश्यकता है कि कार्य करने से पूर्व सोच लिया जाये, कार्य अनुमानों के आधार पर नहीं बल्कि तथ्यों के आधार पर किया जाये और कार्यों को सामान्यतः व्यवस्थित रूप में किया जाये।"
5. हेनरी फेयोल : "नियोजन कई अवसरों पर कई प्रकार से प्रकट होता है, किन्तु कार्य का नियोजन

'नियोजन' की सबसे प्रमुख अभिव्यक्ति है।" कार्य के नियोजन में मुख्यतः चार बातें होती हैं –

अ. प्राप्त किए जाने वाले परिणामों का उल्लेख,

ब. किए जाने वाले कार्यों की दिशा,

स. आगे बढ़ने वाले सोपान,

द. प्रयोग किए जाने वाले तरीके।

6. डब्ल्यू एच न्यूमेन : "भविष्य में क्या करना है उसे पहले से ही निश्चय कर लेना नियोजन है।"

7. जे. पी. बर्गर : "नियोजन एक भावी प्रक्रिया तथा उनके परिणाम की पहले से ही कल्पना करने की योग्यता है।"

8. रोमोर ई. हैरिस : "नियोजक को नियोजन के उद्देश्य बताना, उन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु नीति निर्धारित करना और विभिन्न नियंत्रणों को जो चुने हुये लक्ष्यों की ओर प्रगति करने के लिए वांछनीय है, निश्चित करना आवश्यक है।"

इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि नियोजन वह प्रक्रिया है, जिसमें उपलब्ध साधनों का विवेकपूर्ण उपयोग, वांछित उद्देश्यों की पूर्ति के लिये संसाधनों की सीमा में ही यथेष्ठ आर्थिक वृद्धि के साथ ही साथ वस्तुओं एवं सेवाओं का न्यायपूर्ण वितरण किया जा सकता है। इसके द्वारा न केवल जनता की आवश्यकताओं की यथोचित पूर्ति की जा सकती है, बल्कि उनके जीवनस्तर में भी पर्याप्त सुधार लाया जा सकता है। इस प्रकार नियोजन एक विवेकपूर्ण, गतिशील और पूर्ण प्रक्रिया है, जिसमें निरन्तर मूल्यांकन समीक्षा अनुश्रवण और आवश्यकतानुसार पुनर्निर्णय इत्यादि बातों के माध्यम से गतिशीलता बनी रहती है।

नियोजन के चरण

सेक्लर हडसन ने एक सुव्यवस्थित नियोजन के निम्नांकित 6 चरण बतायें हैं –

1. समस्याओं की सुविचारित व्याख्या एवं उनका क्षेत्र निर्धारण,
2. समस्याओं से संबंधित समस्त जानकारी का अध्ययन,

3. समस्याओं के निराकरण के लिए उपलब्ध साधनों, विधियों तथा मार्गों का आंकलन,
4. व्यवाहारिक साधनों एवं गतिविधियों में से एक अथवा अधिक मार्गों एवं विधियों का अस्थायी प्रयोग द्वारा परीक्षण,
5. अनुभव, अनुसंधान तथा नवीन प्रवृतियों के प्रकाश में परिणामों का मूल्यांकन,
6. समस्यायों एवं परिणामों पर पुनिर्विचार।

नियोजन के प्रकार

प्रसिद्ध विद्वान न्यूमैन के अनुसार एक प्रबंधक जिन योजनाओं का निर्माण करता है उनका संबंध – नीतियों, प्रक्रियाओं, कार्यक्रमों, प्रोजेक्टरों, बजट आदि से होता है। ये योजनायें चार आधारों पर विभाजित की जा सकती हैं–

1. प्रकार के आधार पर – नीतियों, प्रक्रियाओं इत्यादि से संबंधित।
2. उपयोग के आधार पर – स्थायी तथा एकल नियोजन।
3. उत्पत्ति के आधार पर – आम जनता की मौजूदा आय में वृद्धि अथवा भौतिक संसाधनों का नियोजन।
4. लक्ष्य के आधार पर – संशोधित क्रियान्वित अथवा नवीन नियोजन।

नियोजन की प्रक्रिया भिन्न-भिन्न देशों में उन देशों की आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं के अनुरूप विभिन्न रूपों में अपनायी गयी है। इसके प्रकारों का एक समन्वित वर्गीकरण निम्नांकित प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है –

1. क्षेत्र के आधार पर –

अ. क्षेत्रीय नियोजन,

ब. राष्ट्रीय नियोजन,

स. अन्तर्राष्ट्रीय नियोजन।

2. स्वरूप के आधार पर –

अ. पूर्ण नियोजन,

ब. आंशिक नियोजन।

3. राजनैतिक एवं आर्थिक व्यवस्था के आधार पर –

अ. पूँजीवादी नियोजन,

ब. समाजवादी नियोजन,

स. प्रजातांत्रिक नियोजन,

द. तानाशाही नियोजन,

इ. सर्वोदयी नियोजन।

4. समय के आधार पर –

अ. अल्पकालीन नियोजन,

ब. दीर्घकालीन नियोजन।

5. संगठन के आधार पर –

अ. केन्द्रित नियोजन,

ब. विकेन्द्रित नियोजन।

6. वित्त एवं उत्पत्ति के आधार पर –

अ. भौतिक नियोजन,

ब. वित्तीय नियोजन।

यद्यपि उपरोक्त वर्गीकरण भी कोई वैज्ञानिक अथवा मान्य वर्गीकरण नहीं है, फिर भी उपरोक्त वर्गीकरण से यह अवश्य स्पष्ट होता है कि वर्तमान समय में आर्थिक नियोजन को अनेक रूपों में अपनाया जा रहा है। यहाँ पर आर्थिक नियोजन के महत्वपूर्ण प्रकारों का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत है।

(1) साधारण नियोजन तथा आंशिक नियोजन

ऐसा नियोजन जो किसी राष्ट्र की समस्त अर्थ व्यवस्था के संबंध में किया जाता है, उसे साधारण नियोजन कहते हैं। इसके अंतर्गत अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों के समन्वित विकास से संबंधित कार्यक्रम सम्मिलित किए जाते हैं।

आंशिक नियोजन की दशा में अर्थ-व्यवस्था के केवल कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों के संबंध में नियोजन किया जाता है। इस प्रकार का नियोजन उन अर्थ व्यवस्थाओं के लिये उपयुक्त होता है, जहाँ सभी क्षेत्रों का संतुलित विकास नहीं हुआ है।

आंशिक नियोजन से अर्थव्यवस्था में पूर्ण समन्वय स्थापित नहीं हो पाता है, यही कारण है कि अधिकांश विकासशील देशों के द्वारा साधारण नियोजन को ही अपनाया जा रहा है।

(2) कार्यात्मक नियोजन तथा संरचनात्मक नियोजन

जब अर्थव्यवस्था की विद्यमान संरचना में बिना कोई परिवर्तन लाये, सुधार लाने के उद्देश्य से नियोजन किया जाता है, तो इसे कार्यात्मक नियोजन कहते हैं। ऐसे नियोजन के अंतर्गत अर्थव्यवस्था के ढाँचे में ही योजनाबद्ध ढंग से सुधार लाने का प्रयास किया जाता है।

अर्थव्यवस्था के संरचनात्मक स्वरूप में परिवर्तन करते हुए जो नियोजन किया जाता है, उसे संरचनात्मक नियोजन कहते हैं। इस प्रकार के नियोजन में देश के समस्त ढाँचे में परिवर्तन लाया जाता है। साधारणतः विकासशील देशों में जहाँ की सामाजिक एवं आर्थिक संरचना अत्यन्त पिछड़ी हुई होती है, वहाँ पर आर्थिक विकास के लिये वहाँ की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक संरचना को परिवर्तित करते हुए नियोजन करके सफलता प्राप्त किया जाता है।

(3) केन्द्रित नियोजन तथा विकेन्द्रित नियोजन

केन्द्रित नियोजन के अंतर्गत प्रमुख आर्थिक निर्णय केन्द्र द्वारा लिए जाते हैं। इस नियोजन में केन्द्र का प्रशासकीय नियंत्रण प्रमुख होता है, जबकि आर्थिक साधनों को गौण माना जाता है। केन्द्रीय सत्ता के द्वारा समय व परिस्थिति के अनुसार आर्थिक निर्णयों को बदला जा सकता है, जो महत्वपर्ण आर्थिक बातों से संबंधित होते हैं। विकास के लिए निर्धारित योजनाओं के बारे में भी निर्णय केन्द्र द्वारा ही लिए जाते हैं। यद्यपि केन्द्र इन महत्वपूर्ण आर्थिक निर्णयों को लेने के पूर्व विभिन्न संस्थाओं, उत्पादन इकाइयों तथा अन्य विशिष्ट उपक्रमों से संबंधित मामलों में परामर्श लेता है, क्योंकि इन पक्षों की योजनाओं के क्रियान्वयन में भी प्रमुख भूमिका होती है। समाजवादी व्यवस्था में केन्द्रित नियोजन उपयुक्त होता है।

विकेन्द्रित नियोजन ऐसा नियोजन है, जिसके अंतर्गत कुछ प्रमुख आर्थिक निर्णय केन्द्रीय सत्ता के द्वारा लिए जाते हैं, और कुछ निर्णय सार्वजनिक एवं निजी उपक्रमों के द्वारा लिये जाते हैं। केन्द्रीय प्रशासन मूलरूप से विनियोग की कुल राशि, मूल्य तथा ब्याज दर के संबंध में निर्णय लेता है। सार्वजनिक एवं निजी उपक्रमों द्वारा केन्द्र निर्धारित मूल्यों के आधार पर उत्पादन की राशि व मात्रा तथा उत्पादन क्षमता, व्याज की दर

व मूल्यों के आधार पर विनियोग की राशि व प्रकृति के संबंध में निर्णय लिए जाते हैं। विकेन्द्रित नियोजन का प्रमुख गुण आर्थिक निर्णयों की स्वतन्त्रता है, किन्तु इसमें सबसे बड़ी कमी यह है कि इसमें आर्थिक व्यवस्था वस्तुतः नियोजित न होकर कृत्रिम रूप में उपयोगी होती है क्योंकि अधिकांश आर्थिक क्रियायें स्वतंत्र रहती हैं। अतः इस व्यवस्था में पूँजीवाद के सभी दोष उत्पन्न हो जाते हैं।

शीघ्र औद्योगीकरण तथा शीघ्र आर्थिक विकास के लिए आर्थिक साधनों का केन्द्रीय प्रशासन अधिक उपयुक्त समझा जाता है, किन्तु स्थायी रूप से दीर्घकाल तक केन्द्रित नियोजन को नहीं अपनाया जा सकता है, क्योंकि केन्द्रीकृत व्यवस्था अधिक समय के बाद अनेक समस्यायें उत्पन्न कर देती है। यही कारण है कि अनेक देश अपने प्रारम्भिक अवस्था में केन्द्रीकृत नियोजन को अपनाने के बावजूद वर्तमान समय में विकेन्द्रित व्यवस्था के प्रति रूचि लेने लगे हैं।

(4) भौतिक नियोजन तथा वित्तीय नियोजन

आर्थिक नियोजन भौतिक साधनों और वित्तीय आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। जब विकास कार्यक्रमों के लक्ष्यों का निर्धारण भौतिक साधनों को ध्यान में रखकर किया जाता है तब यह नियोजन भौतिक नियोजन कहलाता है। इसमें भौतिक साधनों; जैसे – श्रम, कच्चा माल तथा अन्य संसाधनों के आधार पर विकास कार्यक्रम निर्धारित किए जाते हैं। इसके तहत विकास के साथ-ही-साथ भौतिक साधनों के उपयोग की दिशाओं में भी परिवर्तन होता रहता है। इसके तहत साधनों का वितरण इस ढंग से किया जाता है, जिससे आय व रोजगार के अवसरों में तेजी से वृद्धि हो सके।

वित्तीय नियोजन में योजना के लक्ष्यों को मौद्रिक या वित्तीय रूप में व्यक्त किया जाता है। इस प्रकार के नियोजन में आवश्यक संसाधनों का मूल्यांकन मौद्रिक रूप में किया जाता है। क्योंकि सरकार को अनेक साधनों को प्राप्त करने के लिए वस्तुतः मुद्राओं का भुगतान करना पड़ता है, जैसे श्रम के लिए मजदूरी दी जाती है।

यदि हम भौतिक नियोजन तथा वित्तीय नियोजन को देखें तो दोनों प्रकार के नियोजनों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। जब भौतिक साधनों के रूप में निर्धारित लक्ष्यों को मुद्रा के रूप में दर्शाया जाता है तब भौतिक नियोजन वित्तीय नियोजन का रूप धारण कर लेता है। वस्तुत : आर्थिक नियोजन तभी सफल हो सकता है, जब दोनों प्रकार के नियोजनों

को एक साथ अपनाया जाता है। अतः दोनों प्रकार के नियोजन एक दूसरे के पूरक हैं।

(5) प्रेरणा द्वारा नियोजन तथा निर्देशन द्वारा नियोजन

पूँजीवादी आर्थिक तंत्र वाले देशों में आर्थिक क्रियायें स्वतंत्र रूप से संचालित होती हैं। आर्थिक क्रियाओं का संचालन एवं प्रबंध निजी उपक्रमियों द्वारा किया जाता है। ऐसी दशा में सरकारी हस्तक्षेप प्रायः नगण्य रहता है। अतः सरकार अप्रत्यक्ष रूप से ही आर्थिक क्रियाओं को नियोजित कर सकती है। आर्थिक क्रियाओं के संबंध में सरकार उपक्रमियों को आज्ञा नहीं दे सकती है ऐसी स्थिति में केवल प्रेरणा द्वारा नियोजन संभव हो पाता है। इस प्रकार स्वतंत्र अर्थव्यवस्था में अपनाया गया नियोजन 'प्रेरणा द्वारा नियोजन' कहलाता है, जो पूँजीवादी एवं मिश्रित अर्थव्यवस्था वाले देशों के लिए उपयुक्त होता है।

जब किसी अर्थव्यवस्था में आर्थिक क्रियाओं का संचालन राज्य द्वारा किया जाता है, तथा जहाँ निजी उपक्रमियों का अभाव होता है, तब निर्देशन द्वारा नियोजन अपनाया जा सकता है। यह नियोजन आज्ञामूलक होता है, अर्थात् केन्द्रीय सत्ता के द्वारा समस्त आर्थिक निर्णय लिए जाते हैं। समाजवादी व्यवस्था वाले देशों में निर्देशन द्वारा नियोजन की प्रक्रिया अपनायी जाती है।

(6) क्षेत्रीय नियोजन, राष्ट्रीय नियोजन तथा अन्तर्राष्ट्रीय नियोजन

विस्तृत आकार वाले देशों में विभिन्न क्षेत्रों की आर्थिक स्थिति में भिन्नता पायी जाती है। यद्यपि देश में प्रचुर साधन उपलब्ध रहते हैं, परन्तु क्षेत्रीय दृष्टि से इनमें पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। अतः योजना क्रियान्वयन के लिये क्षेत्रीय विकेन्द्रीकरण अपनाना आवश्यक होता है। जब क्षेत्रीय आधार पर योजनाओं का निर्माण एवं क्रियान्वयन किया जाता है, तो ऐसे नियोजन को क्षेत्रीय नियोजन कहते हैं। वस्तुतः क्षेत्रीय नियोजन राष्ट्रीय नियोजन का ही भाग होता है, जो राष्ट्रीय नियोजन के अंतर्गत ही संचालित किया जाता है। क्षेत्रीय योजना एवं राष्ट्रीय योजना के मध्य उचित समन्वय पर ही क्षेत्रीय योजना की सफलता निर्भर करती है।

जब योजना देश के सम्पूर्ण राजनैतिक सीमा अथवा सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के संबंध में होती है तो वह राष्ट्रीय नियोजन कहलाता है। यह नियोजन

सम्पूर्ण देश के निवासियों एवं अर्थव्यवस्था के हितों को ध्यान में रखकर किया जाता है। राष्ट्रीय नियोजन के अंतर्गत सरकार के द्वारा ऐसी नीतियों एवं नियंत्रणों का उपयोग किया जाता है जिससे योजना के लक्ष्यों की पूर्ति हो सके। अधिकांश देशों में राष्ट्रीय नियोजन को ही अपनाया गया है।

जब दो या दो से अधिक देशों द्वारा संयुक्त रूप से निर्दिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आयोजन किया जाता है, तब ऐसे आयोजन को अन्तर्राष्ट्रीय नियोजन कहा जाता है। इस नियोजन के अंतर्गत सभी देशों के आर्थिक संसाधनों को एकत्र कर लिया जाता है, तथा सभी देशों की अर्थव्यवस्थाओं को एक इकाई के रूप में मानकर विकास संबंधी प्रयास किये जाते हैं। मार्शल योजना, कोलम्बो योजना, योरोपीय साझा बाजार, कामिकान, अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, गाट इत्यादि अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के आधार पर निश्चित योजना के क्रियान्वयन के उदाहरण हैं। वर्तमान समय में 'यूरो मुद्रा' प्रणाली का क्रियान्वयन एक अन्तराष्ट्रीय नियोजन का महत्वपूर्ण उदाहरण है।

(7) स्थायी नियोजन एवं आपात-कालीन नियोजन

जब किसी देश के द्वारा नियोजन एक दीर्घकालीन प्रक्रिया के रूप में अपनाया जाता है, तथा कुछ समय के बाद स्थगित नहीं किया जाता है, तब ऐसा नियोजन स्थायी नियोजन कहलाता है। ऐसा आयोजन दीर्घकाल की नीतियों संदर्भ में अपनाया जाता है। जैसे भारत, रूस, चीन, पूर्वी जर्मनी जैसे देशों में स्थायी नियोजन अपनाया गया है।

जब किसी आकस्मिक राजनैतिक अथवा आर्थिक परिस्थिति के कारण कोई योजना बनायी जाती है तो इसे आपातकालीन नियोजन कहा जाता है। ऐसी योजना आपातकालीन व्यवस्था के लिये लागू की जाती है। सामान्यतः राजनैतिक अशान्ति, आर्थिक संकट, युद्धोपरान्त आर्थिक पुनर्निर्माण जैसे अल्पकालिक उद्देश्यों के लिए आपातकालीन नियोजन किया जाता है। जबकि स्थायी नियोजन का उद्देश्य देश के आर्थिक एवं सामाजिक विकास को अग्रसरित करना होता है।

(8) अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन नियोजन

यह वर्गीकरण योजना की अवधि को दृष्टिगत करके बनाया गया है। जब योजना अल्पकालीन अवधि के लिए जैसे– सामान्यतः एक वर्ष के लिए बनायी जाती है, तो उसे अल्पकालिक नियोजन कहा जाता है। ऐसी

योजनायें सामान्यतः देश के वार्षिक बजट से संबंध रखती हैं, ताकि सरकारी बजट में योजना संबंधित व्ययों का उचित वित्तीय प्रावधान किया जा सके।

दीर्घकालीन नियोजन के अंतर्गत देश के दीर्घकालिक भविष्य के संबंध में अनुमानित आवश्यकताओं के अनुसार विकास का एक ढाँचा तैयार किया जाता है तथा इस निर्धारित ढाँचे के अनुरूप क्रमबद्ध ढंग से विकास संबंधी प्रयास किए जाते हैं। निर्धारित विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न कार्यक्रमों को अल्पकालिक योजना के रूप में विभाजित करने का प्रयास किया जाता है।

इससे यह स्पष्ट है कि देश के साधनों के सर्वोत्तम उपयोग, समस्याओं के प्रभावशाली ढंग से निराकरण तथा सुनिश्चित विकास लक्ष्यों की प्राप्ति में दीर्घकालीन नियोजन का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान है तथा दीर्घकालीन योजनाओं को पूरा करने में विभिन्न अल्पकालीन योजनाओं का क्रमबद्ध निष्पादन करना आवश्यक होता है।

(9) गतिशील नियोजन एवं स्थिर नियोजन

जब योजना में परिवर्तन के संबंध में कठोरता के बजाय अधिक लोचकता रखी जाती है तथा परिस्थितियों के अुनसार कार्यक्रमों को बदला जा सकता है, तब ऐसी योजना गतिशील नियोजन कहलाती है।

जब केवल लक्ष्यों की पूर्ति के लिए कठोरता पूर्वक बिना किसी परिवर्तन के योजना लागू करने का प्रावधान कर दिया जाता है तो उसे स्थिर नियोजन कहा जाता है।

(10) ऊपर से नियोजन एवं नीचे से नियोजन

योजना के संबंध में यह एक विवादपूर्ण प्रश्न होता है कि योजना किस स्तर से लागू की जाय। अर्थ, व्यवस्था के संगठित अथवा अर्ध संगठित क्षेत्र को ध्यान में रखकर जब आयोजन किया जाता है तब यह ऊपर से नियोजन कहलाता है। ऐसे नियोजन से संगठित आर्थिक क्षेत्रों को और अधिक संगठित एवं विकसित होने का अवसर मिलता है तथा योजना को लागू करने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। किन्तु इस प्रकार के नियोजन से संपन्न वर्ग को ही लाभ प्राप्त होता है जबकि समाज के निम्न एवं आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्ग तक योजना के लाभों का प्रभाव नहीं पहुँच पाता।

नीचे से नियोजन का आशय समाज के निम्न वर्ग के लोगों के आर्थिक एवं सामाजिक हितों को ध्यान में रखकर बनायी गयी योजना से है। ऐसी

योजना का लक्ष्य तुलनात्मक रूप से पिछड़े हुए क्षेत्रों को इतना विकसित करने से है ताकि उनका स्तर विकसित क्षेत्रों के समान हो सके। इस प्रकार के नियोजन में विकेन्द्रित ढंग से क्षेत्रीय अथवा स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर विकास के कार्यक्रम निर्धारित किए जाते हैं, ताकि प्रत्येक गरीब व्यक्ति को ऐसी योजना से लाभ मिल सके। यह योजना अधिक व्यापक एवं विकेन्द्रित होती है, तथा विशेष रूप से अविकसित एवं अर्द्धविकसित देशों की दृष्टि से अधिक उपयोगी होती है।

(11) संतुलित नियोजन एवं लक्ष्य नियोजन

प्रो. ज्वेंइग के अनुसार नियोजन के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों के आधार पर आर्थिक नियोजन के उपरोक्त दो प्रारूप हैं। संतुलित नियोजन का आशय ऐसे आयोजन से है, जिसमें रोजगार को एक उच्च स्तर पर स्थिरता लाने तथा आर्थिक संकटों को रोकने का प्रयास किया जाता है।

लक्ष्य नियोजन से आशय ऐसी व्यवस्था से है, जिसमें विभिन्न लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए योजना बनायी जाती है ताकि विभिन्न लक्ष्यों के अंतर्गत देश के विकास की सभी बातें आ जाती हैं। इसमें निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक नियंत्रण लागू किए जाते हैं।

(12) पूँजीवादी नियोजन

पूँजीवादी व्यवस्था में स्वतंत्र आर्थिक प्रणाली होती है, जिसके अंतर्गत निजी हित को प्रधानता दी जाती है। आर्थिक क्रियायें बिना किसी हस्तक्षेप के संचालित होती रहती हैं, तथा लाभ व उत्पादन पर व्यक्तिगत स्वामित्व पाया जाता है। ऐसी व्यवस्था में आर्थिक नियोजन की कल्पना निराधार प्रतीत होती है, क्योंकि नियोजन के अन्तर्गत आर्थिक क्रियाओं का नियंत्रण एवं नियमन निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक होता है, तथा इस संबंध में राजकीय हस्तक्षेप की आवश्यकता होती है। इस प्रकार यद्यपि नियोजित अर्थव्यवस्था पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के पूर्णतः विपरीत है फिर भी वर्तमान समय में पूँजीवादी देशों में आर्थिक नियोजन को अपनाया जाने लगा है।

पूँजीवादी नियोजन के अंतर्गत केन्द्रीय सत्ता को कुछ विशेष अधिकार सौंप दिए जाते हैं, ताकि कुछ विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक योजनायें लागू कर सकें। ऐसी योजनायें सरकार द्वारा प्रारम्भ की जाती हैं और बाद में ऐसी योजनायें निजी उपक्रमियों को सौंप दी जाती हैं।

पूँजीवादी नियोजन दो रूपों में अर्थव्यवस्था में लागू किया जा सकता है—

अ. सुधारात्मक नियोजन,

ब. विकासात्मक नियोजन।

सुधारात्मक नियोजन अर्थव्यवस्था में प्रतिकूल परिस्थितियों में सुधार लाने के लिए किया जाता है। विकासात्मक नियोजन अर्थव्यवस्था के किसी क्षेत्र विशेष अथवा सम्पूर्ण देश के विकास के लिए अपनाया जाता है। राज्य के द्वारा बनायी गयी योजना अर्थ– व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों को क्रियान्वित करने के लिए सौंप दी जाती है, जिस पर राज्य का किसी प्रकार का दबाव नहीं रहता है। सामान्यतः पूँजीवादी देशों में नियोजन आंशिक रूप से ही अपनाया जाता है। सरकार देश के विनियोजन, मांग एवं पूर्ति में समन्वय तथा अधिकतम विदोहन के सम्बन्ध में आवश्यक योजनाबद्ध कदम उठा सकती है। पूँजीवादी नियोजन की प्रमुख बातें अग्रांकित हैं –

1. यह विशिष्ट आर्थिक परिस्थितियों तथा संकटकालीन दशाओं में अपनाया जाता है।
2. इसमें आवश्यक राजकीय हस्तक्षेप के माध्यम से निजी उपक्रमियों को सुदृढ़ता प्रदान की जाती है।
3. उपभोग की स्वतंत्रता पर किसी प्रकार का दबाव नहीं डाला जाता।
4. निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अर्थव्यवस्था में आवश्यक परिवर्तन कर लिए जाते हैं।
5. उत्पादन की व्यवस्था उपभोक्ताओं की माँग, पूर्ति एवं लाभ को ध्यान में रखकर की जाती है।

(13) समाजवादी नियोजन

समाजवादी व्यवस्था कुछ मौलिक सिद्धान्तों; जैसे– आय व अवसर की समानता, निजी स्वामित्व की समाप्ति, निजी उपक्रम व प्रतियोगिता की समाप्ति तथा न्यायपूर्ण वितरण पर आधारित होती है। स्वाभाविक है कि उक्त सिद्धान्तों की प्रतिस्थापना के लिए सरकार को सम्पूर्ण दायित्वों के निर्वहन का भार वहन करना पड़ता है। राष्ट्रीय संसाधनों का उत्पादन, क्रियायों में प्रभावशाली उपयोग तथा उत्पादन का न्यायोचित वितरण करने का कार्य एक राष्ट्रीय आयोजन व्यवस्था के अंतर्गत ही करना संभव होता है। अतः समाजवादी व्यवस्था के अंतर्गत राष्ट्रीय आयोजन एक अभिन्न अंग के रूप में अपनाया जाता है। समाजवादी व्यवस्था में आर्थिक साधनों का समाजीकरण कर लिया जाता है तथा सम्पूर्ण क्रियाओं का संचालन केन्द्रीय नियंत्रण के

अंतर्गत राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखकर किया जाता है। देश के समस्त आर्थिक साधनों तथा श्रमशक्ति का प्रयोग नियोजित ढंग से किया जाता है, तथा उत्पादन ढांचे का स्वरूप इस प्रकार से निर्धारित किया जाता है ताकि समाज की अधिकतम आवश्यकता की पूर्ति की जा सके। यही कारण है कि नियोजित अर्थ–व्यवस्था एवं सामाजिक अर्थव्यवस्था में काफी समानतायें पायी जाती हैं। सामान्यतः इस नियोजन पद्धति में निम्नांकित विशेषतायें पायी जाती हैं –

1. नियोजन व्यवस्था का अभिन्न अंग होता है।
2. आर्थिक सामजिक समानता स्थापित करने का प्रयास किया जाता है।
3. यह व्यापक आयोजन होता है।
4. केन्द्रीकृत व्यवस्था का पोषक होता है।
5. संसाधनों पर राजकीय अधिकार रहता है।
6. यह सामाजिक हित को लक्ष्य बनाता है।
7. निर्देशन द्वारा संचालित होता है।
8. उपभोक्ता की स्वतंत्रता पर नियंत्रण रहता है।
9. नीचे के स्तर से नियोजन होता है।
10. बाजार तंत्र पर नियंत्रण रहता है।
11. औद्योगीकरण को महत्व दिया जाता है।

(14) साम्यवादी नियोजन

साम्यवादी नियोजन वस्तुतः समाजवादी नियोजन का अधिक कठोर रूप है। साम्यवादी नियोजन को सर्वप्रथम सोवियत रूस ने 1929 में अपनाया और इसके बाद 1949 के पश्चात् इसे अनेक देशों ने अपनाया। अनेक देशों में साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना के कारण संसाधनों के स्वामित्व में परिवर्तन के अलावा अनेक दृष्टियों से व्यवस्था में मौलिक परिवर्तन उपस्थित हुए। जब साम्यवादी देशों के द्वारा आर्थिक केन्द्रीकरण की व्यवस्था को अपनाया गया तो इसमें नीति निर्धारण एवं नियंत्रण के संबंध में अधिक केन्द्रीकरण के रास्ते को अपनाया गया। निजी स्वामित्व एवं बाजार तंत्र की स्वतंत्रता को ऐसी व्यवस्था में तनिक भी स्थान प्रदान नहीं किया जाता है। अर्थव्यवस्था में आर्थिक सत्ता का केन्द्रीकरण सरकार के पास रहता है। सभी

उद्योग एवं आर्थिक क्रियायें सरकार द्वारा संचालित होती हैं। उपभोक्ताओं की स्वतंत्रता लगभग समाप्त हो जाती है। इसके अंतर्गत राज्य निर्देशों के बजाय आज्ञाओं के आधार पर नियमन एवं नियंत्रण का कार्य करता है। अत्याधिक कठोरता एवं जनता में भय की स्थिति राजकीय कार्यकलापों के प्रभावशाली संचालन के लिए न केवल सहायक होती है, बल्कि उत्पादन आदि के क्षेत्र में आश्चर्यजनक उपलब्धियों के लिए सहयोगी भी होती है। इस नियोजन की प्रमुख विशेषतायें निम्नांकित हैं–

1. आर्थिक साधनों का समाजीकरण,
2. वर्गहीन समाज का गठन,
3. आर्थिक साधनों का वितरण,
4. पारस्पारिक प्रतिस्पर्धा का अन्त,
5. स्वतंत्र बाजार तंत्र की समाप्ति,
6. सत्ता का केन्द्रीकरण,
7. अधिकतम त्याग,
8. सुदृढ़ प्रशासकीय तंत्र।

(15) तानाशाही नियोजन

अधिनायकवादी या तानाशाही व्यवस्था से आशय ऐसी आर्थिक व्यवस्था से है, जिसके अंतर्गत आर्थिक संसाधनों पर निजी स्वामित्व पाया जाता है। किन्तु उनके उत्पादन कार्यों का उपयोग अत्यन्त कठोर राजकीय नियंत्रण के अधीन किया जाता है ताकि सम्पूर्ण राष्ट्र को लाभ प्राप्त हो सके। इस व्यवस्था में जहाँ एक ओर निजी उपक्रमियों को आर्थिक क्रियाओं में भाग लेने का अवसर प्रदान किया जाता है, वहीं दूसरी ओर उन्हें कठोर सरकारी निर्देशों के तहत काम करना पड़ता है। उन्हें निजी लाभ को बढ़ाने तथा श्रमिकों के शोषण करने की छूट राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा करते हुए प्रदान नहीं की जाती है। तानाशाही नियोजन में राष्ट्रीय हितों को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है।

तानाशाही नियोजन का मूल उद्देश्य एक तरफ पूँजीवादी व्यवस्था के गुणों का अधिकतम लाभ लेना और दूसरी तरफ कठोर नियंत्रण के द्वारा पूँजीवादी बुराइयों से राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा करना होता है। इस प्रकार के नियोजन में निर्देशन द्वारा नियोजन एवं प्रेरणा द्वारा नियोजन दोनों का मिश्रित रूप पाया जाता है। देश के आर्थिक सामाजिक एवं राजनैतिक मामलों में

तानाशाही सरकार का प्रभुत्व पाया जाता है। ऐसे प्रभुत्व के कारण देश में आंतक का वातावरण बना रहता है तथा मानवीय स्वतंत्रता का पूर्ण रूप से अपहरण हो जाता है।

तानाशाही नियोजन साम्यवादी नियोजन के सदृश होने पर भी साम्यवादी नियोजन में साधनों पर स्वामित्व सरकार का होता है, जबकि तानाशाही नियोजन में उत्पति के साधनों पर निजी स्वामित्व पाया जाता है। किन्तु उन पर नियंत्रण सरकार रखती है। वास्तव में तानाशाही नियोजन आपातकालीन परिस्थितियों; जैसे– युद्ध, प्राकृतिक संकट, आर्थिक मन्दी आदि का सामना करने के लिए उपयुक्त होता है। हिटलर की जर्मनी एवं मुसोलिनी की इटली तानाशाही नियोजन के ज्वलंत उदाहरण हैं।

(16) प्रजातांत्रिक नियोजन

प्रजातांत्रिक नियोजन मिश्रित अर्थव्यवस्था में अपनाया जाता है, प्रजातांत्रिक नियोजन पूँजीवादी व समाजवादी व्यवस्था का मिश्रण है। जिसमें समाजवादी लक्ष्यों की पूर्ति के लिए प्रजातांत्रिक विधियों का उपयोग किया जाता है। देश में जनता के प्रतिनिधियों के रूप में प्रजातांत्रिक सरकार पायी जाती है, जो योजना कार्यक्रमों का निर्धारण एवं संचालन जनता से परस्पर विचार-विमर्श के बाद करती है। जनता के ऊपर कोई भी कार्यक्रम बलपूर्वक थोपे नहीं जाते हैं। योजना का उद्देश्य, योजना का स्वरूप, वित्तीय प्रावधान, उत्पादन के लक्ष्य आदि से संबंधित महत्वपूर्ण मामलों को विचार-विमर्श करने के पश्चात् केन्द्रीय सत्ता के द्वारा स्वीकृति प्रदान करने पर ही अन्तिम रूप दिया जाता है। दूसरे शब्दों में, प्रजातांत्रिक नियोजन जनता के द्वारा नियोजन होता, जो जनता की इच्छा पर लागू होता है तथा जनता की इच्छा पर ही समाप्त किया जा सकता है। संक्षेप में प्रजातांत्रिक नियोजन की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं –

1. मिश्रित अर्थव्यवस्था, जिसमें निजी एवं सरकारी दोनों क्षेत्रों का विकास हो,
2. उपरोक्त दोनों क्षेत्रों के आर्थिक क्रियाकलापों की उचित सीमाओं का निर्धारण किया गया हो,
3. निजी क्षेत्र सरकारी क्षेत्र के सहयोगी के रूप में कार्य करें,
4. व्यक्तिगत राजनीतिक आर्थिक एवं सामाजिक स्वतंत्रता को विशेष बल मिलता हो,

5. जनहित एवं मानवीय कल्याण पर विशेष बल हो,
6. बाजार तंत्र की स्वतंत्रता के साथ ही राज्य का आवश्यक नियंत्रण,
7. विकेन्द्रित समाज की स्थापना का प्रयास हो रहा हो,
8. आर्थिक व्यवसायों का राष्ट्रीयकरण, एकाधिकारी प्रवृतियों पर नियंत्रण एवं संसाधनों के केन्द्रीकरण पर बल दिया जा रहा हो,
9. प्रेरणा द्वारा नियोजन का मार्ग प्रशस्त हो,
10. सामाजिक न्याय, सामाजिक सुरक्षा एवं मानवीय कल्याण पर विशेष बल दिया जाता हो।

(17) गांधीवादी अथवा सर्वोदयी नियोजन

सर्वोदयी विचार धारा का मूल उद्देश्य समाज में न्यायपूर्ण वितरण कर अधिकतम सामाजिक कल्याण की स्थापना करना है। सर्वोदय का मूलाधार सर्व+उदय अर्थात् सभी का विकास है। प्रत्येक व्यक्ति को एक इकाई के रूप में मानकर सर्वोदय का ध्येय प्रत्येक व्यक्ति का समग्र विकास करना है। सर्वोदयी योजना में लोगों के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के तत्व को समाविष्ट किया जाता है। गांधीजी ने देश की आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर जिन अर्थशास्त्रीय विचारों को प्रकट किया, उन्हीं के आधार पर गांधीवादी नियोजन के स्वरूप को जन्म मिला। गांधीजी का स्पष्ट मत था कि देश की ग्रामप्रधान अर्थव्यवस्था के विकास के लिए पश्चिमी देशों व साम्यवादी देशों की नकल करना अव्यवहारिक एवं निरर्थक होगा। हमें अंपनी परिस्थितियों के अनुकूल स्वदेशी व्यवस्था के रूप में मार्ग निश्चित करना होगा ताकि एक अहिंसक समाज का निर्माण किया जा सके। गांधीवादी विचारधारा की बुनियाद पर ही सर्वोदयी नियोजन की रूपरेखा तैयार होती है, जिसमें सत्य, अहिंसा, परस्पर सद्भावना, सहयोग एवं श्रम की महत्ता को विशेष स्थान प्रदान किया गया है। इस नियोजन में स्थानीय संसाधनों के अधिकतम लाभदायक उपयोग तथा सभी क्षेत्रों के विकेन्द्रित ढंग से विकास पर जोर दिया जाता है। इसमें लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना तथा विकेन्द्रीकरण तथा सामुदायिक विकास के कार्यक्रमों के माध्यम से प्रत्येक गांव को आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ाया जाता है, ताकि सर्वांगीण विकास का कार्य संभव हो सके। इस नियोजन की प्रमुख विशेषतायें अग्रांकित हैं—

1. भूमि का अधिकार जोतने वाले के पास,
2. भूमि का समान वितरण,
3. सहकारी आधार पर कृषि कार्य,
4. न्यूनतम एवं अधिकतम आय के निर्धारण के द्वारा आय एवं धन की विषमताओं को रोकना,
5. प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण,
6. ग्राम पंचायतों को विकसित कर न्याय की सुलभता,
7. उद्योगों का विकेन्द्रीकरण,
8. विदेशी व्यवसायों की समाप्ति या राष्ट्रीयकरण,
9. आत्मनिर्भरता एवं शारीरिक श्रम को अधिक महत्त्व,
10. वर्गहीन समाज की रचना,
11. प्रशिक्षण युक्त शिक्षा पद्धति।

2
केन्द्रीकृत नियोजन

केन्द्रीकृत नियोजन का तात्पर्य

नियोजन का तात्पर्य होता है, अर्थव्यवस्था पर निश्चित सीमा तक नियंत्रण के माध्यम से अर्थव्यवस्था को विकास के निर्धारित पथ पर अग्रसरित करना। किसी भी राजनैतिक विचारधारा के अन्तर्गत नियोजित अर्थव्यवस्था का सफल संचालन सरकारी नियंत्रण की अनुपस्थिति में सम्भव नहीं हो सकता है। इसी सरकारी नियंत्रण की मात्रा के अनुसार केन्द्रीकरण एवं विकेन्द्रीकरण का निर्धारण होता है। केन्द्रीकृत नियोजन के अंतर्गत प्रमुख आर्थिक निर्णय केन्द्र द्वारा लिए जाते हैं। जैसा कि बिलोवी का कहना है कि–

''अत्यधिक केन्द्रीकृत व्यवस्था में स्थानीय इकाइयाँ कार्यवाहक अभिकरणों के रूप में कार्य करती हैं। उन्हें अपनी पहल से कार्य करने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं होती है। प्रत्येक कार्य केन्द्रीय कार्यालय की ओर से दिया जाता है।''

केन्द्रीकृत नियोजन में विकास के लिये निर्धारित योजनाओं के बारे में समस्त निर्णय केन्द्र द्वारा लिए जाते हैं, जो प्रशासकीय निर्णय के रूप में होते हैं तथा जिससे हटकर कार्य करना स्थानीय इकाइयों के लिए संभव नहीं होता है। केन्द्रीकृत नियोजन समाजवादी व्यवस्था का मूलाधार है। यही कारण है कि सोवियत रूस में केन्द्रीकृत नियोजन अपनाया गया था। इस प्रकार मोटे तौर पर यदि निर्णय करने की अधिकांश शक्ति उच्चतम स्तरों पर इस प्रकार एकत्र हो जाये कि निम्नतर स्तरों के अधिकारी लगभग प्रत्येक प्रश्न पर अपने से ऊँचे अथवा उच्चतर अधिकारी के पास दौड़ते रहें तो उसे केन्द्रीकृत व्यवस्था कहते हैं तथा ऐसी व्यवस्था में अपनाया जाने वाला नियोजन केन्द्रीकृत नियोजन कहलाता है। केन्द्रीकृत व्यवस्था में निम्नांकित विषयों पर केन्द्र का नियोजन के माध्यम से नियंत्रण रहता है–

1. उत्पादन के चयन पर नियंत्रण,
2. विनियोजन के ऊपर नियंत्रण के माध्यम से उत्पादन साधनों के चयन पर नियंत्रण,

3. विदेशी विनिमय पर नियंत्रण के माध्यम से विदेशी व्यापार पर निरांत्रण,
4. मूल्यों, मजदूरी एवं ब्याज पर नियंत्रण,
5. उपभोग पर नियंत्रण।

इस प्रकार के केन्द्रीकृत नियोजन में उत्पादन, मजदूरी, ब्याजदर, मूल्य उत्पादन, विनियोग आदि से संबंधित निर्णय केन्द्र द्वारा होते हैं। नियोजित विकास की प्रारम्भिक अवस्था में विभिन्न देशों ने केन्द्रीकृत नियोजन पद्धति ही अपनाया था। केन्द्रीकृत नियोजन के परिणामस्वरूप शीघ्र औद्योगीकरण तथा शीघ्र आर्थिक विकास को बल मिलता है।

केन्द्रीकृत नियोजन की विशेषतायें

केन्द्रीकृत नियोजन की प्रमुख विशेषतायें निम्नांकित हैं–

1. प्रशासन के सभी अंगों पर सक्रिय एवं प्रभावशाली नियंत्रण होने से स्थानीय कर्मचारियों में स्वेच्छाचारिता का आभाव रहता है।
2. समस्त देश में एक प्रकार की नीतियों एव सिद्धान्तों के आधार पर कार्य होता है।
3. कठोर नियंत्रण से भ्रष्टाचार की सम्भावना में कमी हो जाती है।
4. समस्त देश के प्रशासनिक एवं आर्थिक व्यवस्था में समन्वय स्थापित कर दिया जाता है।
5. बजट निर्माण, करारोपण आदि कतिपय कार्य ऐसे हैं जो केन्द्रीकृत नियोजन में ही अच्छे ढंग से संपादित किए जा सकते हैं।
6. आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक मामलों में केन्द्र सरकार का प्रभुत्व बना रहता है।
7. केन्द्रीकृत नियोजन आपातकालीन परिस्थितियों में विशेष उपयोगी होता है।

केन्द्रीकृत नियोजन की कमियाँ

इस नियोजन पद्धति की प्रमुख कमियाँ निम्नांकित हैं–

1. क्षेत्रीय समस्यायों का पूर्ण ज्ञान नहीं होता है।
2. स्थानीय प्रशासनिक कुशलता का ह्रास होने लगता है।
3. जनता एवं प्रशासन के मध्य प्रोत्साहन एवं सहयोग का अभाव रहता है।

4. एक ही स्थान पर कार्यों का अधिक भार होने के कारण अकुशलता पनपने लगती है।
5. इस प्रकार का नियोजन कठोर होता है, जिससे जनता में असंतोष बढ़ता है।
6. स्थानीय समस्याओं के निराकरण में बहुधा गलत निर्णय होने की संभावना रहती है।
7. केन्द्रीकृत प्रशासन की अनेक कमियाँ, जैसे– कार्यों में देरी, लालफीताशाही इत्यादि भी पायी जाती है।
8. पूंजी विनियोजन में बाधा से विकास बाधित हो जाता है।

केन्द्रीकृत नियोजन की असफलता

भारत में प्रारम्भ में केन्द्रीकृत नियोजन पद्धति को समाजवादी लक्ष्यों के पूर्ति हेतु अपनाया गया। पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत भारतीय अर्थव्यवस्था में अनेक उल्लेखनीय संरचनात्मक परिवर्तन हुए तथा विकास के स्तर में भी वृद्धि हुई। किन्तु अनेक लक्ष्य न केवल अपूर्ण हुए बल्कि कहीं-कहीं इतनी असफलतायें हाथ लगीं कि नियोजन पद्धति पर से विश्वास हटने लगा। उसके निम्नांकित कारण थे –

(1) गड़बड़ अर्थव्यवस्था

केन्द्रीय सत्ता द्वारा जो मूल्य प्रणाली लागू की जाती है उसका ठीक से पालन नहीं हो पाता इसके कारण अर्थव्यवस्था में गड़बड़ी पैदा हो जाती है।

(2) प्रेरणा का अभाव

केन्द्रीकृत व्यवस्था में प्रेरणा का अभाव होने से कार्य का परिणाम, कार्य की दशायें इत्यादि ऊपर से निश्चित होने के कारण कार्यकर्ताओं की कार्यक्षमता में धीरे-धीरे कमी आने लगती है।

(3) पूँजी-निर्माण में कठिनाई

सरकारी दबाव से ही कार्य होने के कारण इस व्यवस्था में पूँजी का निर्माण नहीं होता। क्योंकि इसमें समस्त महत्वपूर्ण संसाधनों पर राज्य का नियंत्रण रहता है। अतः व्यक्तिगत उद्यमी सीमित पूँजी ही एकत्रित कर पाते हैं।

(4) नौकरशाही एवं लालफीताशाही

केन्द्रीकृत नियोजन में योजनाओं का क्रियान्वयन सरकारी तंत्र के द्वारा ही कराया जाता है। शासकीय कर्मचारियों की कार्यकुशलता एवं रुचि पर

ही योजना का कार्य निर्भर रहता है। किन्तु व्यवहार में यह पाया जाता है कि सरकारी अधिकारी एवं कर्मचारी जो योजना क्रियान्वित करते हैं उनमें योजना के प्रति निष्ठा का अभाव व उदासीनता का होना, अकुलशता एवं भ्रष्टाचार को पनपाने में सहायक होता है। उसके फलस्वरूप योजना के कार्यों को पूर्ण करने में विलम्ब होने के साथ ही उनकी असफलता की गम्भीर समस्या उत्पन्न हो जाती है।

(5) अधिक मानवीय श्रम की आवश्यकता

केन्द्रीकृत नियोजन में योजना संबंधी विकास कार्यक्रमों के लिए काफी अधिक संख्या में लोगों की आवश्यकता होती है। योजना निर्माण से लेकर योजना संचालन तक के कार्यों में मानवीय श्रम का उपयोग करना पड़ता है।

(6) अतिगोपनीयता

केन्द्रीकृत नियोजित व्यवस्था में अत्यन्त गोपनीयता रखी जाती है, इस कारण जनता का अधिक सहयोग प्राप्त नहीं हो पाता है।

(7) आर्थिक संकट

केन्द्रीकृत नियोजन के परिणाम स्वरूप आर्थिक मंदी, बेरोजगारी, मुद्रास्फीती आदि उत्पन्न होने के आक्षेप लगाये जाते हैं।

(8) तानाशाही को बढ़ावा

केन्द्रीकृत नियोजन व्यवस्था तानाशाही प्रवृतियों को बढ़ाता है। नियोजक एक तानाशाह के रूप में योजना को लागू करता है तथा ऐसा प्रतीत होता है कि योजना को व्यक्तियों पर लागू न करके व्यक्तियों को योजना पर लागू किया गया है।

नियोजित अर्थव्यवस्था के उपरोक्त आरोप को केवल प्रजातान्त्रिक व्यवस्था के आधार पर विकेन्द्रीकृत नियोजन के माध्यम से हटाया जा सकता है। क्योंकि ऐसी स्थिति में सत्ता का विकेन्द्रीकरण व छोटी-छोटी प्रजातांत्रिक संस्थाओं की स्थापना के कारण तानाशाही प्रवृतियों को अवसर नहीं मिलता है। केन्द्रीकृत नियोजन की अन्य भी अनेक आलोचनायें की जाती हैं, जैसे– निजी साहस व हित का विनाश करने वाली तथा नवीन तकनीक एवं प्रविधियों के नाम पर भारी धनराशि का अपव्यय किया जाना इत्यादि किन्तु इसके बावजूद विकासशील देशों में प्रारम्भिक अवस्था में केन्द्रीकृत नियोजन प्रणाली को अधिक सफल होते हुए देखा गया है। फिर भी उपरोक्त दोषों

के अतिरिक्त कुछ प्रशासनिक व्यवस्थागत दोष भी केन्द्रीकृत नियोजन में परिलक्षित होते हैं, जैसे–

1. इस नियोजन में प्रशासन को समस्यायों का पूर्ण ज्ञान नहीं होता है। अतः एकरूपता पर आवश्यकता से अधिक बल देने से प्रशासनिक कुशलता का ह्रास होने लगता है।
2. इस नियोजन पद्धति का एक और सबसे बड़ा दोष निर्णय करने में पर्याप्त देरी लगना भी है।
3. इसके द्वारा जनता और प्रशासन के मध्य सहयोगात्मक सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता है।
4. स्थानीय परिस्थितियों की पर्याप्त जानकारी के आभाव में क्षेत्रीय समस्याओं के सम्बन्ध में बहुधा गलत निर्णय ले लिए जाते हैं।

3
विकेन्द्रीकृत नियोजन

विकेन्द्रीकृत नियोजन केन्द्रीकृत नियोजन के विपरीत प्रक्रिया है। इस नियोजन प्रणाली के तहत् केन्द्र का नियंत्रण कम तथा स्थानीय इकाइयों का नियंत्रण अधिक होता है। इस नियोजन प्रणाली में यद्यपि सीमित मात्रा में किन्तु महत्वपूर्ण एवं नीतिगत निर्णय केन्द्रीय सत्ता के द्वारा लिये जाते हैं, शेष निर्णय स्थानीय, सार्वजनिक एवं निजी उपक्रमों द्वारा लिये जाते हैं। केन्द्रीय प्रशासन द्वारा मुख्य रूप से विनियोजन, मूल्य एवं ब्याज इत्यादि से सम्बन्धित निर्णय लिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त शेष समस्त निर्णय सार्वजनिक एवं निजी उपक्रमों के द्वारा केन्द्र निर्धारित मूल्यों के आधार पर लिये जाते हैं। इस प्रकार विकेन्द्रीकृत नियोजन के अर्न्तगत उपक्रमों को आर्थिक निर्णयों के लेने की स्वतंत्रता होती है। विकेन्द्रीकृत नियोजन को समझने से पूर्व विकेन्द्रीकरण को समझना आवश्यक है।

विकेन्द्रीकरण

विकेन्द्रीकरण भी विकास के सदृश तृतीय विश्व देशों में अपना तात्पर्य निरन्तर परिवर्तित करता जा रहा है। 1990 के पश्चात् सामाजिक न्याय की बात को लेकर गरीबी हटाने तथा समाज के हर वर्ग को विकास का लाभ पहुँचाने के प्रयासों के द्वारा तथा सतत् विकास के नारे के साथ विकेन्द्रीकरण के विचार का भी उद्‌भव एवं विकास हुआ। खकड़ावाला के अनुसार "विकेन्द्रीकरण के सिद्धांत के तर्क इतने शक्तिशाली हैं कि उसे सर्वत्र स्वीकृति प्राप्त हो गई है।" विकेन्द्रीकरण को निम्नांकित चार अर्थों में प्रयोग किया जाता है।–

1. 1950 से 60 तक इसका तात्पर्य स्थानीय शासन के सशक्तिकरण से लगाया जाता था।
2. 1970 से 1980 तक सहभागिता के माध्यम से राष्ट्रीय विकास एवं अन्य विकास से सम्बंधित लक्ष्यों को प्राप्त करने का साधन इसे माना जाने लगा था।
3. 1980 के पश्चात् संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रयासों से विकास का तात्पर्य ऐसी संवृद्धि से लगाया जाने लगा जिसमें सामाजिक न्याय के आधार पर वितरण किया जाये। इसके लिये विशिष्ट क्षेत्र में निश्चित लक्ष्य समूहों के लिये नये कार्यक्रम निर्मित किये गये–

जैसे– गरीबी उन्मूलन, मूलभूत आवश्यकताओं की व्यवस्था, रोजगार एवं जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि से जुड़े हुये कार्यक्रम। इसके अन्तर्गत विकेन्द्रीकरण का तात्पर्य विकास प्रशासन और उसके प्रबन्धन से सम्बद्ध हो गया है, जिस पर निम्नांकित शक्तियों का प्रभाव पड़ रहा है–

1. केन्द्रीकृत नियोजन और नियंत्रण के द्वारा विकास सम्बन्धी गतिविधियों से मोह भंग होना,
2. समानता पर आधारित समृद्धि के लिये सहभागी कार्यक्रमों का क्रियान्वयन किया जाना,
3. केन्द्र से समस्त विकासात्मक गतिविधियों के संचालन में असमर्थता।

उपरोक्त कारणों से केन्द्र से सत्ता का स्थानान्तरण इकाइयों के तरफ हो गया है।

वर्तमान समय में विकेन्द्रीकरण की अवधारणा परिवर्तित हो गई है। अब विकेन्द्रीकरण तृतीय विश्व के देशों की समस्याओं के समाधान का माध्यम बन गया है। इन देशों के प्रमुख समस्याओं में हैं– कर्ज की समस्या, पर्यावरण की समस्या एवं सतत विकास की समस्या। विश्व बैंक की प्रेरणा से इन समस्याओं का निवारण विकेन्द्रीकरण एवं सहभागी क्रियाओं के माध्यम से किया जाने लगा है।

विकेन्द्रीकरण का शाब्दिक अर्थ उस प्रक्रिया से है जिसके तहत केन्द्रीय सरकार से स्थानीय इकाइयों को कार्यों का हस्तान्तरण होता है।

"इनसाइक्लोपीडिया आफ सोशल साइंसेस" के अनुसार विकेन्द्रीकरण का तात्पर्य सरकार के उच्च स्तर से निम्न स्तर को विधिक, न्यायिक एवं प्रशासकीय सत्ता का हस्तान्तरण है।

रोन्डी नेली ने निम्नस्तर की प्रशासनिक इकाइयों द्वारा अधिकारों की सहभागिता के स्तर के आधार पर विकेन्द्रीकरण के निम्नांकित चार रूप बताये हैं–

1. विकेन्द्रीकरण (Deconcentration),
2. प्रत्यायोजन (Delegation),
3. अधिकारान्तरण (Devolution),
4. निजीकरण (Privatisation),

विकेन्द्रीकरण

इसका तात्पर्य "भारी बोझ को छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़ना" होता है। इस प्रकार इसका तात्पर्य केन्द्रीय सरकार के सीमित शक्तियों का क्षेत्रीय अधिकारियों को हस्तान्तरित किया जाना है।

प्रत्यायोजन

प्रशासकीय सुविधा के लिये इसके तहत कुछ कार्य निम्न स्तर के लिये प्रदान कर दिया जाता है। किन्तु अंतिम रूप से इन कार्यों का उत्तरदायित्व उच्चस्तरीय संगठन के पास ही रहता है।

अधिकारान्तरण

इसके तहत केन्द्रीय सरकार के द्वारा स्वतंत्र सत्ता या शासकीय इकाइयों को कार्य एवं सत्ता के हस्तातंरण के द्वारा सशक्त बनाया जाता है। विकेन्द्रीकरण की इस अवस्था में स्थानीय इकाई पूर्णतः स्वायत्त हो जाती है तथा केन्द्र अप्रत्यक्ष रूप से कुछ पर्यवेक्षाणात्मक नियंत्रण बनाये रखता है।

निजीकरण

यह विकेन्द्रीकरण का एक अन्य रूप है, जिसमें शासन द्वारा अपने कुछ उत्तरदायित्व या सार्वजनिक कार्यों को स्वैच्छिक या गैरशासकीय संगठनों को हस्तान्तरित कर दिया जाता है अथवा निजी उद्यमियों को सौंप दिया जाता है।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि विकेन्द्रीकरण एवं अधिकारान्तरण विकेन्द्रीकरण की दो शिरायें हैं, जो निम्नांकित चित्र से स्पष्ट है।

शक्ति एवं सत्ता के हस्तान्तरण की मात्रा

– कम ⟵⟶ अधिक +			
विकेन्द्रीकरण Deconcentration	प्रत्यायोजन Delegation	अधिकारान्तरण Devolution	निजीकरण Privatisation

(विकेन्द्रीकरण के वैकल्पिक रूप)

इस चित्र से स्पष्ट है कि विकेन्द्रीकरण में सबसे कम कार्यों एवं उत्तरदायित्वों का हस्तान्तरण होता है जबकि प्रत्यायोजन में इसके मध्य की स्थिति है। इन सबके ऊपर विकेन्द्रीकरण एक छतरी का कार्य करता है यद्यपि शब्दिक अर्थ की दृष्टि से विकेन्द्रीकरण का तात्पर्य राज्य की समस्त शक्तियाँ इकाइयों को हस्तान्तरित कर देना है, किन्तु विकास से सम्बन्धित तथ्यों में इसका तात्पर्य राष्ट्रीय स्तर से किसी भी स्तर के संगठन अथवा अभिकरण को योजना निर्माण, निर्णय निर्माण एवं सार्वजनिक कार्यों के प्रबन्धन की सत्ता के हस्तान्तरण से लगाया जाता है। वास्तविक विकेन्द्रीकरण में निम्नांकित तीन बातें समाहित हैं–

1. शक्तियों एवं अपेक्षित धन के साथ उत्तरदायित्वों को निम्न स्तर को दिया गया हो।
2. ऐसा विकेन्द्रित स्तर जो अपने कार्यों के प्रति पूर्णरूपेण जवाबदेह हो।
3. स्थानीय जनता की नियोजन एवं क्रियान्वयन में सहभागिता सुनिश्चित हो।

विकेन्द्रीकरण के आयाम

विकेन्द्रीकरण के कुल चार आयाम हैं–

1. कार्यात्मक विकेन्द्रीकरण,
2. वित्तीय विकेन्द्रीकरण,
3. प्रशासकीय विकेन्द्रीकरण,
4. राजनीतिक विकेन्द्रीकरण।

(1) कार्यात्मक विकेन्द्रीकरण

किसी भी विभाग के पास यदि तकनीकी प्रकृति के अनेक कार्य होते हैं तो वह समस्त तकनीकों का विशेषज्ञ न होने के कारण अपने कार्यों को विकेन्द्रित कर देता है। इसी प्रकार जब संगठन अनेक प्रकार के कार्यों को सम्पादित करता है तो उसकी प्रत्येक इकाई अलग से क्षेत्रीय कार्यों को सम्पादित करती है। इस प्रकार विकेन्द्रीकरण का एक आधार कार्यों का स्वरूप है।

(2) वित्तीय विकेन्द्रीकरण

जब राष्ट्रीय आय के व्यय का निर्णय भी स्थानीय स्तर पर सौंप दिया जाता है तो उसे वित्तीय विकेन्द्रीकरण कहते हैं। इसके अन्तर्गत प्रायः आबंटित धन किस कार्य पर व्यय किया जायेगा, का निर्णय स्थानीय स्तर पर कर लिया जाता है। किन्तु तकनीकी योग्यता के कार्य बजट निर्माण, कर एकत्रीकरण, लेखा इत्यादि में यह व्यवस्था लागू करना उचित नहीं होता है।

(3) प्रशासकीय विकेन्द्रीकरण

प्रशासकीय विकेन्द्रीकरण के अन्तर्गत प्रशासकीय सत्ता का विघटन होता है। प्रशासकीय विकेन्द्रीकरण उर्ध्वाधर, क्षेत्रीय और कार्यात्मक होता है। उर्ध्वाधर का तात्पर्य है कि उर्ध्व या उच्च सत्ता, निम्न सत्ता को कुछ स्वतंत्र शक्तियाँ सौंपती है। क्षेत्रीय विकेन्द्रीकरण का रूप जिला एवं सम्भाग है। इसमें प्रशासकीय सुविधा की दृष्टि से देश को क्षेत्र के आधार पर इकाईयों

में विभाजित कर दिया जाता है। कार्यात्मक विकेन्द्रीकरण के अन्तर्गत निर्णय करने के कुछ क्षेत्र व्यक्तिगत अथवा व्यावसायिक विशेषज्ञों के समूह को सौंप दिया जाता है। जैसे केन्द्रीय समाज कल्याण परिषद, बार एसोसियेशन इत्यादि। जब अभिकरण की नीतियों एवं प्रक्रियाओं में स्थायित्व आ जाता है, तो प्रशासकीय विकेन्द्रीकरण आसानी से हो जाता है।

(4) राजनीतिक विकेन्द्रीकरण

इसे प्रजातंत्रात्मक विकेन्द्रीकरण के नाम से भी जाना जाता है। राजनीतिक विकेन्द्रीकरण के अर्न्तगत शासन के नवीन तत्वों की स्थापना की जाती है। भारत संघ के अर्न्तगत स्वायत्तता प्राप्त राज्यों की स्थापना राजनीतिक विकेन्द्रीकरण का एक उदाहरण है। राजनीतिक शक्ति का स्त्रोत जनता है। अतः अन्ततः जनता के प्रतिनिधियों को स्थानीय स्तर पर भी अधिकार प्राप्त हो जाते हैं।

नियोजन

जैसा कि पूर्व अध्याय में स्पष्ट किया जा चुका है कि नियोजन का तात्पर्य किसी कार्य को करने के पूर्व एक विस्तृत रूपरेखा या कार्य का सम्पूर्ण ढाँचा तैयार कर लेना होता है। प्रशासनिक उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये प्रायः सामूहिक प्रयास करने पड़ते हैं। अतः इसमें सर्वप्रथम उद्देश्य एवं लक्ष्य निर्धारित करके वर्तमान स्थिति से अपेक्षित स्थिति की तरफ ले जाने में आने वाली समस्त समस्याओं का आंकलन करने के पश्चात् सर्वाधिक प्राथमिक समस्याओं का समाधान ढूँढ़ने का प्रयास किया जाता है। साथ ही क्रियान्वयन के दौरान गतिविधियाँ उचित दिशा की ओर जा रही हैं अथवा नहीं इसको भी जानने का प्रयास किया जाता है।

विकेन्द्रीकृत नियोजन

विकेन्द्रीकरण एवं नियोजन के तात्पर्य से सम्बन्धित विश्लेषण से स्पष्ट है कि विकेन्द्रीकृत नियोजन वह प्रक्रिया है, जिसमें नियोजन के उपरोक्त चरण ऊपर से नीचे की तरफ प्रवाहित न होकर नीचे से ऊपर की तरफ प्रवाहित होते हैं। इस प्रकार के नियोजन में निम्न स्तरीय इकाइयों का महत्व न केवल बढ़ जाता है अपितु लाभार्थियों का नियोजन एवं उसके क्रियान्वयन दोनों ही स्तरों पर पूर्ण सहभागिता रहती है।

वास्तव में विकेन्द्रीकृत नियोजन विकास की एक व्यापक अवधारणा है, जिसके अंतर्गत राष्ट्रीय स्तर की संस्था द्वारा स्थानीय स्तर की संस्था या संगठन को अपनी योजना बनाने, निर्णय निर्माण करने तथा सावर्जनिक कार्यों

का प्रबंधन करने की सत्ता हस्तांरित की जाती है। इस आधार पर उस स्थानीय स्तर की संस्था द्वारा विकास संबंधी कार्यों में विशिष्ट भूमिका का निर्वहन किया जाने लगता है। इस भूमिका का निर्वाह करने के लिए उस स्थानीय संगठन/ऐजेंसी को कुछ शक्तियाँ एवं उत्तरदायित्व सौंप दिये जाते हैं जिससे कि उस संगठन/संस्था को अपने विकास के लक्ष्यों को निर्धारित करने की स्वतंत्रता मिल जाती है। उन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उसे स्थानीय स्तर पर संसाधनों को जुटाने कि वैधानिक शक्ति प्राप्त हो जाती है। परिभाषा के रूप में हम उपर्युक्त विचारों को इस भांति व्यक्त कर सकते हैं–

"Decentralization refers to a situation in which lower- ranking decision-units acquire all powers and responsibilities and have also control over the determination of their goals and targets."

उपर्युक्त शब्दों का विश्लेषण करने से विकेन्द्रीकरण की कुछ विशेषताएं स्पष्ट होती हैं जो इस प्रकार हैं–

1. शीर्ष स्थर से निम्न स्तर की संस्था को कुछ कृत्यों (Functions) अथवा उत्तरदायित्वों को सौंपना तथा इन कृत्यों के अनुकूल शक्तियों एवं आवश्यक वित्त का प्रावधान करना,
2. विकेन्द्रीकृत संस्था को उसके कार्यकलापों के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी बनाना तथा,
3. स्थानीय जनता को स्थानीय/क्षेत्रीय नियोजन तथा योजनाओं को क्रियान्वयन की प्रक्रिया में भागीदारी प्रदान करना।

स्वतंत्र भारत में सत्ता का विकेन्द्रीकरण

अब हम यह देखने का प्रयास करें कि स्वतंत्र भारत में विकेन्द्रित नियोजन व्यवस्था का क्या स्वरूप रहा है। यद्यपि भारत में नियोजन की प्रक्रिया को 1951 में प्रारम्भ कर दिया गया था किन्तु विकेन्द्रीकृत नियोजन की नीति को अपनाने में करीब 30 वर्षों का समय लग गया। इस विकास के पाँच स्तरों को निम्नांकित रूप में चिन्हित किया जा सकता है।

(1) सामुदायिक विकास कार्यक्रम का चरण (1950-60)

इस चरण को हम सामुदायिक विकास कार्यक्रम चरण कहते हैं। जब ग्रामीण स्तर पर राष्ट्रीय प्रसार सेवाओं के माध्यम से गांवों के समग्र विकास पर बल दिया गया था। पूरे देश को विकास खंडों में बाँटा गया था और आशा की गई थी कि स्थानीय लोगों की सहायता से ग्राम का समग्र विकास किया जा सकेगा। सामुदायिक विकास कार्यक्रम एक तो केन्द्र द्वारा संचालित

होता था, इसके साथ ही स्थानीय संस्थाओं में वित्त तथा तकनीकी ज्ञान का अभाव तथा समूचे कार्यक्रम पर नौकरशाही का बोलबाला था। अतः विकेन्द्रीकृत नियोजन ग्रामीण स्तर पर पहुँचने में असफल रहा, यह "top-down" planning model था। अतः इसमें जनसमूह की भागीदारी का अभाव था। यही कारण था कि 1957 में बलवंत राय मेहता समिति की नियुक्ति इस उद्देश्य से की गई थी कि समिति जन भागीदारी को निश्चित करने तथा जिला प्रशासन को पुनर्गठित करने संबंधी अपने सुझाव दे। मेहता समिति ने पंचायत राज व्यवस्था में त्रि-स्तरीय, लोकतांत्रिक तरीके से चयनित ग्राम पंचायतों, ब्लॉक पंचायतों एवं जिला पंचायतों की स्थापना की सिफारिश की तथा इन पंचायतों को नियोजन एवं विकास कार्यों की जिम्मेदारी सौंपने पर बल दिया।

(2) त्रिस्तरीय पंचायतीराज का क्रियान्वयन (1960–70)

इस काल को हम पंचायती राज चरण कह सकते हैं। जिस काल में बलवंत राय मेहता समिति की सिफारिशों के आधार पर गाँव ब्लॉक जिला स्तर पर त्रि–स्तरीय, लोकतांत्रिक तरीके से चुनी हुई पंचायत संस्थाओं की स्थापना की गई। किन्तु 1970 तक इन संस्थाओं का ह्रास शुरू हो गया और नियोजन के मामलों में केन्द्र तथा राज्यों द्वारा योजनाओं का क्रियान्वयन स्थानीय स्तर भी होता रहा।

(3)ग्रामीण विकास एवं गरीबी उन्मूलन योजनाओं का निर्माण (1970–80)

इस चरण में ग्रामीण विकास एवं गरीबी उन्मूलन से संबंधित अनेक विशेष कार्यक्रमों के क्रियान्वयन पर जोर दिया गया था। इन कार्यक्रमों के माध्यम से समाज के दुर्बल लोगों एवं क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित किया गया। इस तरह ग्रामीण विकास के कार्यक्रम Target Groups तथा Taget area पर केन्द्रित होने लगे। The Trible Area Development Programme (TADP), Hill Area Trible Development Programme (HADP) तथा Minimum Needs Programme(MNP) इसी तरह के कार्यक्रम थे।

(4) जिला स्तरीय नियोजन का काल (1980-90)

1980-90 का चरण जिला आयोजन (District Planning Phase) था। इस काल में विकेन्द्रीकरण, जिला एवं स्थानीय नियोजन पर विशेष ध्यान दिया गया था। District Planning Boards की स्थापना भी इसी काल में हुई। इस काल में इस तथ्य पर बल दिया गया कि नियोजन को कोई खण्डित क्रिया

न माना जाय; नियोजन एक "Single holistic operation" है अत: Sectoral planning/programmes को एक unified planning activity के अंतर्गत संगठित किया जाये।

(5) पंचायत राज पुनर्जागरण काल (1990 से अब तक)

इस काल में स्व. श्री राजीव गांधी ने लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम उठाया था। उन्होंने पंचायतों को वैधानिक दर्जा देने, पंचायत राज संस्थाओं को सरकार के तीसरे स्तर के रूप में स्थापित करने, उन्हें अधिक शक्तियाँ प्रदान करने, उनके कार्यकाल की अवधि को निश्चित करने तथा महिलाओं एवं दलितों को समुचित प्रतिनिधित्व देने की दृष्टि से संसद में बिल पेश किया था, किन्तु कुछ कारणों से उसे पारित नहीं कराया जा सका। इस कार्य को श्री नरसिंहराव सरकार ने पूरा किया था 73वें संविधान संशोधन द्वारा विकेन्द्रीकरण की दिशा में अति महत्वपूर्ण कदम उठाया गया है साथ ही 74वाँ संविधान संशोधन भी इसमें काफी सहायक सिद्ध हुआ।

इस विवरण से स्पष्ट होता है कि विकेन्द्रीकृत नियोजन का विकास देश में क्रमिक रूप से हुआ है। इस प्रक्रिया में केन्द्र सरकार ने तथा उसके द्वारा स्थापित विभिन्न समितियों ने विकेन्द्रीकृत नियोजन के लिए अपनी सिफारिशें प्रस्तुत की हैं। इसमें विशेष स्थान हनुमन्ताराव समिति (1982–84) तथा डॉ. जी. व्ही. के. राव समिति (1985) का विशेष स्थान है। इन समितियों ने जिला नियोजन की प्रक्रिया के संबंध में दूरगामी सिफारिशें पेश की थीं, जिन्हें आज त्रि–स्तरीय पंचायतें व्यवहार में ला रही हैं। उदाहरणार्थ, राव कमेटी का सुझाव था कि जिला स्तर पर नियोजन के सारे कार्य जिला परिषदों के द्वारा किए जायें; जिला योजनाओं को संगठित कर उन्हें स्टेट प्लान में एकीकरण करने के लिए राज्य विकास परिषद (State Development Council) की स्थापना की जाय; ग्राम स्तर पर ग्राम आयोजन मंच (Village Planning Forum) गठित किए जाये; जिला नियोजन समितियों को "united funds" दिए जाये आदि-आदि। संक्षेप में केन्द्र ने District Plan के निर्माण में सविस्तार मार्गदर्शन प्रदान किये हैं, 1972 के बाद राज्य की नियोजन मशीनरी को पुष्ट करने की दिशा में वित्तीय सहायता दी है। 1982 में (District Plannin) के बारे में सविस्तार (guidelines) प्रदान की है; 1980 के बाद पंचायतों के तीनों स्तरों के जनप्रतिनिधियों एवं अधिकारियों को प्रशिक्षण देने के कार्य में महती भूमिका निभायी है तथा 1993 के संविधानिक संशोधन द्वारा पंचायतों को कानूनी स्थायित्व प्रदान किया है।

जब हम विकेन्द्रीकृत नियोजन की प्रक्रिया पर जिला स्तर पर ध्यान दें तो कुछ दुर्बलताएँ / कठिनाइयाँ हमारे सामने आती हैं जो विकेन्द्रीकृत नियोजन के मार्ग में बाधाएं खड़ी करती हैं। कुछ बाधाएँ इस प्रकार हैं–

1. राज्य सरकारों तथा उनके विभागीय प्रमुखों में प्रशासनिक एवं वित्तीय विकेन्द्रीकरण के प्रति अनमनापन है जिससे जिला स्तर नियोजन इकाईयों को हानि होती है।
2. जिला स्तर पर नियोजन से जुड़ी इकाइयों में प्रभावशाली समन्वय का अभाव पाया जाता है।
3. नियोजन प्रक्रिया से जुड़े विभिन्न भागीदारों के बीच सलाह-मशविरा करने के लिए किसी संस्थात्मक व्यवस्था (institutional arrangements) का अभाव है; इसके परिणामस्वरूप निर्णय लेने में व्यक्तिगत स्वार्थ तथा नेताओं एवं अधिकारियों का मनमौजीपन एवं भावप्रवणता के तत्व (arbitrainess and subjectivity factors) प्रवेश कर जाते हैं, जिससे नियोजन प्रक्रिया को हानि होती है।
4. प्रशिक्षित स्टाफ का अभाव है।
5. योजनाएँ बनाते समय वित्तीय संसाधनों की मर्यादाओं पर ध्यान नहीं दिया जाता है जिसके परिणाम स्वरूप योजनाओं को राज्य स्तर पर समन्वित करते समय संसाधनों का पुनर्वितरण (reallocation) किया जाता है; जिससे स्थानीय योजनाकारों को निराशा होती है।
6. बजट द्वारा वित्त वितरण इस प्रकार होता है कि आवश्यक वित्त आवश्यक समय पर नहीं मिल पाता जिससे नियोजकों का मनोबल टूटता है।
7. नियोजन मूलतः जनता के हित के लिए है किन्तु अभी स्थानीय स्तर पर साधारण जनता की सहभागिता बहुत कम है इसके लिये आवश्यक है कि जनता की नियोजन में रुचि बनाये रखने के लिए स्थानीय दबाव समूहों / हित समूहों का गठन किया जाये, जिनका कि आज की स्थिति में ग्रामीण स्तर पर अभाव है।

जनसहभागिता एवं विकास

गहराई से देखने पर स्पष्ट होगा कि विकेन्द्रीकृत नियोजन एवं जन-सहभागिता का घनिष्ट संबंध है। ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक के बिना दूसरे का कोई महत्व ही नहीं रहता। नियोजन आखिर जनता के हितार्थ ही किया जाता है और यदि जनता ही इस प्रक्रिया से दूर है तब सारी प्रक्रिया ही निरर्थक बन जाती है। दूसरी ओर नियोजन के अभाव में जनता के सम्मुख विकास का लक्ष्य ओझल हो जाता है, जो स्थानीय नेताओं के नारे से गुमराह होती रहती है । अतः स्थानीय नियोजन प्रक्रिया में जनता की सहभागिता नितान्त आवश्यक है। साम्यवादी देशों का अनुभव बताता है कि जहाँ नियोजन की प्रक्रिया केन्द्रस्थ थी, जनता की

रुचि/सहभागिता के अभाव में वहाँ की व्यवस्थाएं चकनाचूर हो गईं।

भारत जैसे गरीब गाँवों के लिये जन सहभागिता का विशेष महत्त्व है। इन गांवों में अधिकांश ऐसे गरीब, अशिक्षित व्यक्ति रहते हैं जिन्हें विकास के लाभ कभी नसीब नहीं हुए। अतः भारत में planning केवल planning के लिये ही नहीं है; यह सामाजिक न्याय की प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण साधन है। भारत में विकास का उद्देश्य समाज में साम्यता (equity) की स्थापना करना है। इस नैसर्गिक एवं सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिये जन-सहभागिता को स्थानीय नियोजन की प्रक्रिया के साथ जोड़ना नितान्त आवश्यक है। भारतीय विकेन्द्रीकृत नियोजन की प्रक्रिया पर दृष्टिपात करने से हमें कुछ सीखें मिलती हैं–

1. विकेन्द्रीकरण की सफलता की कुछ पूर्व शर्तें हैं, जिनके अभाव में नियोजन असफल रहेगा। अतः इसकी सफलता के लिये निम्नलिखित चीजों की आवश्यकता है: राजनीतिक एवं नौकरशाही की सत्ता हस्तांतरण की सच्ची इच्छा शक्ति, कृत्य, वित्तीय एवं प्रशासनिक स्तर पर विकेन्द्रीकरण, स्थानीय स्तर पर नियोजन मशीनरी की स्थापना, तकनीकी सहायता, जनता की सक्रिय सहभागिता तथा समुचित प्रशिक्षण की व्यवस्था,
2. विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया तथा उसकी नीतियों में स्थिरता की आवश्यकता है, उसमें समय-समय पर अनावश्यक बदलाव नहीं किये जायें,
3. नियोजन की खुराक भी एक साथ नहीं पिलाई जाय; इसे चरणबद्ध ढंग से लागू किया जाये।

   अंत में यह कहना प्रासंगिक होगा कि भारत में राजनीतिक एवं आर्थिक विकेन्द्रीकरण पिछले 20-25 वर्षों में कदम से कदम मिला कर साथ–साथ चला है। आर्थिक नियोजन के प्रारंभिक वर्षों में केन्द्र तथा राज्यों के योजना आयोगों की प्राथमिकता थी, किन्तु जैसे–जैसे लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के चरण राज्य स्तर पर बढ़ते गये, आर्थिक स्तर पर विकेन्द्रीकृत योजना का विकास स्थानीय स्तरों के साथ जुड़ता गया है। इस व्यवस्था की अनेक कठिनाइयाँ एवं समस्याएं हैं जिनसे सहभागियों का रात-दिन का वास्ता पड़ता रहता है। उनके अनुभवों के ऊपर विचार-विनिमय करते हुए उन कठिनाइयों/त्रुटियों को दूर करने के मार्गों को ढ़ँढने और विकेन्द्रीकृत नियोजन को सफल बना कर जिले की जनता को लोकतंत्र एवं आर्थिक विकास के फल से लाभान्वित करने का प्रयास किया जाना आवश्यक है।

4

भारत में विकेन्द्रित नियोजन का अनुभव

भारत में विकेन्द्रित नियोजन का इतिहास भी तभी से प्रारम्भ होता है जबसे भारत में योजना निर्माण के लिये प्रथम बार चिंतन प्रारम्भ हुआ। श्री विश्वेश्वरैया जो भारत में योजनाओं के जनक माने जाते हैं, के द्वारा 1942 में किये गये अपने अध्ययन "जिला विकास योजना– सबल प्रयास द्वारा आर्थिक प्रगति", में मैसूर के लिये चार स्तरीय नियोजन प्रणाली के लिये सुझाव प्रस्तुत किया गया था। गाँधीवादी नियोजन प्रक्रिया में "स्थानीय स्तरीय नियोजन" को समस्त नियोजन पद्धति का आधार माना गया है। स्वतंत्रतापूर्व के प्रयोगों के अनुभव ने स्वतंत्रता के पश्चात विभिन्न स्वयंसेवी समूहों के कार्यों को प्रभावित किया। इसके साथ ही प्रथम योजना सहित सभी योजनाओं के प्रपत्रों में क्षेत्र विकास अवधारणा एवं विकेन्द्रित नियोजन के महत्व को दर्शाया गया । फिर भी नियोजन की मुख्य धारा स्वतंत्रता के पश्चात् गाँधीवादी आदर्शों से परे हो गयी। नियोजन देश की राजधानी एवं प्रान्तों की राजधानियों में केन्द्रित हो गया। सामुदायिक विकास खण्ड अत्यन्त ही सीमित रूप से सहयोग प्रदान कर रहे हैं।

विकेन्द्रीकृत नियोजन की प्रक्रिया को सर्वप्रथम प्रेरणा अर्थशास्त्रियों के भौतिक संघवादी सिद्धान्त से प्राप्त हुआ, जिसके तीन आधार हैं–

- निर्धारण,
- पुनर्वितरण,
- स्थिरीकरण।

इन विद्वानों का मत है कि अपने व्यापक प्रकृति के कारण पुनर्वितरण एवं स्थिरीकरण तो केन्द्रीय अभिकरण द्वारा ही बेहतर ढंग से संचालित किये जा सकते हैं, किन्तु कार्यों का निर्धारण तो स्थानीय स्तर पर ही किया जाना उचित है। मान्ग्रेव ने 1959 में बताया कि सार्वजनिक सेवाओं की प्राथमिकता उपभोक्ताओं के समूह में भिन्नता रखती है। इसी प्रकार आटेस 1978 ने भौतिक विकेन्द्रीकरण की विशेषता स्पष्ट करते हुऐ कहा है कि प्रत्येक सार्वजनिक सेवा यदि सबसे छोटे भौगोलिक क्षेत्र के लिये क्षेत्राधिकार पर

नियंत्रण रखने वाली सत्ता के माध्यम से उपलब्ध करायी जाये तो इससे लाभ एवं कीमत दोनों में वृद्धि होगी। सार्वजनिक सुविधायें एकीकृत स्थानीय विशेषताओं से युक्त नहीं होती हैं। इसी प्रकार विभिन्न समुदायों की सार्वजनिक सुविधाओं के लिये भिन्न-भिन्न प्राथमिकतायें होती हैं। केन्द्र स्तर पर नियोजन के माध्यम से उपरोक्त दोनों में सामंजस्य स्थापित करना कठिन होता है। अतः इसके लिये विकेन्द्रीकरण का प्रावधान प्रायः विद्वानों द्वारा सुझाया जा रहा है। विकेन्द्रीकृत नियोजन के पक्ष में अनेक विचार प्रस्तुत किये गये–

1. इसमें जन आवश्यकताओं के अनुरूप तथा स्थानीय स्तर पर प्रासंगिक तथा प्राकृतिक संसाधनों के अनुरूप कार्यक्रमों का निर्माण किया जाता है।
2. केन्द्रीकरण के संकीर्ण विभागीकरण, आधार स्तर के कार्यक्रमों के मध्य पारस्परिक पूरकता के अभाव, दुहराव एवं विभाजन जैसी कमियों का स्थान नहीं रहता है।
3. विकेन्द्रीकृत व्यवस्था में सामान्य जनता की भागीदारी में वृद्धि होने से नियोजित विकास के लिये अतिरिक्त संसाधनों को एकत्रित करने, संसाधनों के दुरूपयोग एवं शोषण को रोकने तथा कार्यक्रमों के प्रभावी क्रियान्वयन, अनुश्रवण एवं मूल्यांकन करने में सहायता प्राप्त होती है।

भारत में विकेन्द्रित नियोजन का अधिकारिक प्रयास

(1) जिला नियोजन के निर्माण के लिये मार्गदर्शिका

योजना आयोग ने सर्वप्रथम 1969 में "गाइड लाइन्स फार फारमुलेशन आफ डिस्ट्रिक्ट प्लानस" जिला नियोजन के निर्माण के लिये मार्गदर्शिका की घोषणा के माध्यम से इस दिशा में पहला प्रयास किया। आयोग ने अपने अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकाला कि अनेक प्रान्तों की पर्याप्त भौगोलिक, भौतिक एवं आर्थिक भिन्नताओं के कारण प्रान्त स्तर पर 'क्षेत्रीय विकास उपागम' को नहीं अपनाया जा सकता है। अतः जिला को ही क्षेत्र स्तरीय नियोजन के लिये आदर्श माना गया, क्योंकि जिले में एक पूर्णतः स्थापित प्रशासकीय इकाई पहले से ही विद्यमान थी, जो नियोजन का कार्य कर सकती थी। अतः इस मार्गदर्शिका में यह निर्देश था कि उपलब्ध सांख्यकीय एवं प्रशासकीय तथ्यों, विद्वान किसानों एवं उद्यमियों के परामर्शों, स्थानीय

कर्मचारियों के अनुभवों, क्रियान्वित कार्यक्रमों के आंकलनों, के साथ-ही-साथ सहकारी संघों, स्थानीय स्वशासन की इकाईयों, बैंकों, पंचायती राज संस्थाओं के साथ विचार विमर्श के पश्चात् "जिला नियोजन" का निर्माण किया जाना चाहिये।

(2) एम. एल. दन्तवाला कार्यदल

विकेन्द्रीकृत नियोजन की दिशा में दूसरा महत्त्वपूर्ण कदम प्रो. एम. एल. दन्तवाला की अध्यक्षता में 1978 में गठित कार्यदल का प्रतिवेदन था। उस समय तक विकास खण्डों को "सामुदायिक विकास खण्ड" के रूप में निर्मित किया जा चुका था किन्तु वे ग्रामीण विकास के लिये केन्द्र द्वारा निर्मित अनेक गरीबी निवारण कार्यक्रमों को भी संचालित करने का कार्य कर रहे थे, जिसके लिए काफी धन इनको प्रदान किया जा रहा था। अतः यह आवश्यक हो गया कि इनका समन्वित ढंग से वे क्रियान्वयन करें जिससे कि शासकीय कार्यक्रमों एवं क्षेत्र के विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं के बीच सम्बन्ध स्थापित हो सके। इसके लिये इस कार्य दल ने विकास खण्ड स्तरीय नियोजन पर बल दिया तथा उसकी पद्धति भी निश्चित किया जिसे प्रयोग के तौर पर पूरे देश से कुछ चयनित विकास खण्डों में क्रियान्वित किया जाना था। इसके लिये इस कार्य दल ने निम्नांकित सुझाव दिये–

1. विकास खण्ड स्तरीय नियोजन के लिये पूरे जनपद हेतु एक ही दल होना चाहिये क्योंकि क्षेत्रस्तरीय नियोजन की क्षमता जिला स्तर पर ही है, जिसमें तकनीकी स्टॉफ की भी सहायता आवश्यक है तथा इस प्रकार के दल के निर्माण से ब्लाक एवं जिला स्तर के मध्य समग्रता में वृद्धि होगी।
2. कुछ राज्यों को छोड़कर प्रायः प्रान्तों में पंचायती राज संस्थाओं के उचित संगठन का अभाव है, किन्तु जहाँ भी उनका अस्तित्व है, सूक्ष्मस्तरीय आधारभूत नियोजन के निर्माण में गरीबों की आवाज निर्णायक रूप में पहुँचाने के लिये उनका उपयोग कम से कम किया जाना चाहिये।

इस प्रकार यह दल मानता था कि स्थानीय स्तर के नियोजन में पंचायती राज संस्थाओं की कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं है। इसके लिये यह दल नौकरशाही नियोजन में विश्वास करता है। इनके अनुसार स्वयंसेवी संस्थाओं एवं व्यावसायिक संस्थाओं का सहयोग नियोजन के लिये लिया जा सकता

है। इस दल की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि इसके सुझावों के आधार पर कुछ 'माडेल ब्लाक' चयनित करके, एन.आई.आर.डी एवं कुछ महत्वपूर्ण स्वायत्तशासी संस्थाओं ने विकास खण्ड स्तरीय नियोजन का प्रयोग किया, जिसके पद्धति से सम्बन्धित अनेक अनुभव प्राप्त हुये।

(3) सी. एच. हनुमन्ताराव कार्यदल

विकेन्द्रीकृत नियोजन के लिये तीसरा महत्वपूर्ण दस्तावेज 1984 में प्रो. सी. एच. हनुमन्ताराव की अध्यक्षता में गठित कार्यदल द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन है। इस दल ने 1969 के पश्चात् विभिन्न प्रान्तों में इस सम्बन्ध में हुई प्रगति के आंकलन के लिये विकन्द्रीकृत नियोजन के स्वरूप का अध्ययन किया। इस दल के अध्ययन से निम्नांकित निष्कर्ष प्राप्त हुये–

1. जिला स्तरीय नियोजन की संस्था को विभिन्न प्रान्तों में जिला नियोजन परिवार/समिति या जिला विकास परिषद/समिति, जिला नियोजन एवं विकास परिषद इत्यादि नामों से पुकारा जाता है।
2. विभिन्न राज्यों में इन योजना संगठनों की अध्यक्षता राज्य के कैबिनेट मंत्री/जिलाधिकरी/एम.एल.ए. अथवा गैर शासकीय विशेषज्ञों द्वारा की जाती थी।
3. इसकी अध्यक्षता के लिये जिला/पंचायत के अध्यक्ष को किसी भी राज्य में उचित नहीं समझा गया।
4. तकनीकी नियोजन कर्मचारी अत्यन्त ही कम थे एवं उन्हें सामान्य प्रशासन से लिया गया था।
5. अधिकांश प्रान्तों में वास्तविक नियोजन प्रक्रिया निम्नानुसार थी–
   - राज्य स्तरीय बजट पारित होना।
   - पारित धन का जिलानुसार विभिन्न विभागों द्वारा विभाजन।
   - आबंटित धन की सूचना जिला स्तर पर देना, सूचना प्राप्ति में प्रायः चार से पाँच माह भी लग जाते हैं।
   - प्राप्त धन के अनुसार अनुमानित जिलावार व्यय पत्रक तैयार किया जाय।
   - इस प्रकार 'जिला योजना' नामक एक पत्रक तैगार हो जाना।
6. केवल महाराष्ट्र, गुजराज, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश एवं जम्मू कश्मीर में प्रान्तीय सरकारों ने कुछ भिन्नता दिखाई। यहाँ जिला स्तर पर

भी पहले कुछ कार्य हुये एवं राज्य योजना का 30 प्रतिशत या 40 प्रतिशत भाग इनके प्रस्तावों से प्रभावित होता था।

बंगाल को छोड़कर 1980 के दशक में कर्नाटक एवं 1990 के प्रारम्भिक दशक में पश्चिम बंगाल की नियोजन प्रक्रिया प्रायः वैसी ही रही। उपरोक्त दोनों प्रान्तों में राजनीतिक कारणों से स्थानीय स्वशासन की इकाइयों को नियोजन की प्रक्रिया से जोड़ने का प्रयास किया गया। इसी प्रकार 1993 के पश्चात् केरल में भी महत्वपूर्ण प्रयास किया गया। इन तीनों प्रान्तों में किये गये प्रयासों का संक्षिप्त विवरण यहाँ पर प्रस्तुत किया जा रहा है।

कर्नाटक में विकेन्द्रीकृत नियोजन

जब कर्नाटक राज्य का गठन 1956 में हुआ उस समय संगठित क्षेत्र में स्थानीय संस्थायें अनेक प्रतिरूपों पर आधारित थीं। गठन के पश्चात् बलवंतराय मेहता समिति के प्रतिवेदन के अनुरूप पुनः त्रिस्तरीय प्रणाली लागू किया गया था। ग्राम पंचायत ग्राम स्तर पर, विकास खंड स्तर पर तालुका परिषद तथा जिला स्तर पर जिला विकास परिषद का गठन किया गया था। किन्तु इस राज्य में भी जो निर्वाचन 1964 में होने चाहिए थे, केवल 1978 में हुये। 1983 में जब यहाँ पर जनता दल का शासन हुआ तो अशोक मेहता समिति के सुझावों के अनुसार द्विस्तरीय प्रणाली लागू करने सम्बन्धी विधेयक तैयार किया गया। दो वर्ष पश्चात् उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति हो गयी। इसके द्वारा जिला परिषद और मण्डल पंचायतों की स्थापना हुई।

जिला परिषद को काफी अधिकारों के साथ ही जिला स्तर की योजना निर्माण का कार्य भी सौंप दिया गया। इसी के साथ-साथ मण्डल पंचायत में दस से बारह हजार निवासियों वाले छोटे-छोटे गांवों का समूह स्थापित किये गये। यद्यपि यहाँ पर दो ही स्तर क्रियाशील थे किन्तु इन दोनों के मध्य में तालुका पंचायत समितियों का भी गठन किया गया था जिसमें समस्त मण्डल पंचायत के अध्यक्ष सदस्य हुआ करते थे। साथ ही सम्बन्धित विकास खण्ड के विधायक भी सदस्य मनोनीत होते थे। यह समिति केवल समन्वयकारी कार्यों को देखा करती थी।

कर्नाटक में 1960 तक जिला नियोजन का प्रारम्भिक प्रयोग सफलतापूर्वक चलता रहा। कर्नाटक में स्थानीय स्तर के नियोजन एवं धन के वितरण के लिये बड़े एवं छोटे मदों में विभाजन जिला स्तर पर ही कर दिया गया था जिससे इस प्रान्त में विकेन्द्रीकृत नियोजन सर्वाधिक सफल रहा। जहाँ पर

योजना हेतु आबंटित धन का 20 प्रतिशत से ऊपर केन्द्र निर्मित स्कीमों के तहत आता था। अब सीधे जिला पंचायत की अनिर्धारित धन अनुमानित आधार पर प्रदान कर दिया जाता था। जिसे वह राज्य सरकार के वार्षिक योजना एवं बजट में सम्मिलित करने हेतु अपना प्रस्तावित प्रपत्र निर्मित करके प्रेषित करती थी।

समस्त मण्डल पंचायतें, जिसमें छोटे-छोटे गांवों की ग्रामसभायें बनायी गयी थीं उनके परामर्श द्वारा अपने लिये आबंटित धन का प्रस्ताव बनाकर भेजती थीं, जिसे जिला पंचायत समन्वित करके तथा जिला स्तरीय योजनाओं सहित मिलाकर अपनी योजना प्रस्ताव तैयार करती थी। जिला योजना के लिये एक प्रपत्र भी तैयार किया गया था। इस पत्र में 12 अध्याय हैं। पहले दस अध्याय प्राकृतिक संसाधनों, आधारभूत संरचना, क्षेत्रीय विकास समस्याओं एवं चल रही योजनाओं के मूल्यांकन इत्यादि से सम्बन्धित विश्लेषण पर आधारित थे। अन्तिम दो अध्याय– जिला के दीर्घकालीन विकास और प्राथमिकताओं से सम्बन्धित योजना से जुड़ा हुए थे। यद्यपि यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रयोग प्रारम्भ किया गया था, किन्तु 1990 में जनता दल सरकार गिर गयी तो इस प्रयोग का भी पटाक्षेप हो गया। कर्नाटक 73वें एवं 74वें संशोधन के द्वारा पुनः विकेन्द्रीकरण को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया जा रहा है।

पश्चिम बंगाल में विकेन्द्रीकरण

पश्चिम बंगाल में विकेन्द्रीकरण का प्रयोग काफी देर से प्रारम्भ हुआ। स्वतंत्रता के पश्चात् ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, विकासखण्ड स्तर पर अंचल पंचायत एवं जिला स्तर पर जिला बोर्ड की स्थापना किया गया।

यद्यपि 1957 में यहाँ पंचायत अधिनियम पारित हुआ था, किन्तु 1963 तक मात्र आधी पंचायतें निर्मित हो पायी थीं। जिला परिषदें तो ब्रिटिश काल से ही यहाँ पर कार्यरत थीं। स्थानीय स्वशासन के पास अल्प संसाधन तथा कार्य की भी अत्यन्त ही कमी थी।

1963 में वर्तमान डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के स्थान पर अंचल परिषद, ब्लाक परिषद तथा जिला परिषद को बनाने के लिए संविधान में संशोधन किया गया। 1960 के मध्य राजनैतिक उथल-पुथल के कारण, ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय स्वशासन का कोई प्रभाव नहीं था।

1973 में पश्चिम बंगाल पंचायत अधिनियम पारित हुआ जिसने चार स्तरीय ढाँचा निम्नवत् था–

1. ग्राम सभा — हैमलेट स्तर पर
2. ग्राम पंचायत — ग्राम स्तर पर
3. पंचायत समिति — ब्लाक स्तर पर
4. जिला परिषद — जिला स्तर पर

यद्यपि कांग्रेस की सरकार ने इस अधिनियम को सत्ता में रहते हुए पारित तो किया किन्तु 1977 में जब वामपंथी सरकार सत्ता में आयी तब स्थानीय चुनावों को संचालित करने के लिए प्रयास किया गया। 1978 में स्थानीय स्वशासी सरकार की इकाइयों के निवार्चन की प्रक्रिया से एक नई लहर आयी तथा प्रत्येक पाँच वर्ष के अंतराल पर यहाँ पर चुनाव होने लगे।

ये चुनाव 1983, 1988, 1993 तथा 1998 में अधिनियम के अनुसार हुए जो कि भारत के प्रान्तों में उल्लेखनीय घटना है। यहाँ न केवल निर्वाचन नियमित हुए, अपितु पश्चिम बंगाल की स्थानीय स्वशासन की शक्तियाँ तथा कार्यों में भी उल्लेखनीय वृद्धि दृष्टिगत हुई। 1978 से बंगाल में वामपंथी सरकार द्वारा सर्वाधिक बड़े स्तर का प्रयोग भारत में प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण का देखने को मिला।

1978 से 1983 के मध्य पश्चिम बंगाल में स्थानीय स्वशासन द्वारा प्राथमिक स्तर पर पश्चिम बंगाल भूमि सुधार के कार्यक्रम के लागू करने के लिए कार्यवाही की गयी। 1978 के चुनावं में स्थानीय स्तर पर गरीब तथा भूमिहीन नेता पर्याप्त मात्रा में चुने गए। 1978, 83 एवं 88 के आंकड़ों के अवलोकन से स्पष्ट है कि ग्रमीण सत्ता की संरचना गरीबों के हक में थी। कोहली (1983) ने पाया कि यह एक प्राचीन राजनैतिक परम्पराओं को तोड़ने वाली घटना है। पश्चिम बंगाल अथवा भारत के अन्य प्रान्तों में गरीबी एवं अमीरी में से किसी भी एक का आधिपत्य न हो ऐसी पंचायतें देखने को इसके पूर्व नहीं मिलीं। नव निर्मित पंचायतों को परिस्थितियोंवश बाढ़ पीड़ितों की सहायता का कार्य भी करना पड़ता है। देखने वालों ने यह भी पाया कि इसके चलते स्थानीय जनता का स्थानान्तरण जो कलकत्ता की ओर होता था, नहीं हुआ, पंचायतों द्वारा सर्वप्रथम भोजन के लिए कार्य तथा बाद में अन्य राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रमों का भी सफलतापूर्वक संचालन किया गया। यह कार्य पंचायत में भूमि सुधार कार्यक्रमों से अर्जित धन के द्वारा किया गया। पंचायतों ने जरूरतमंद किसानों की मदद तथा बाजार की सुविधायें जैसे चुनौतीपूर्ण कार्यों को पहचानने तथा कार्य करने का सफल प्रयास किया।

1985 में त्रिस्तरीय नियोजन प्रणाली का गठन किया गया। राज्य स्तर पर स्टेट प्लानिंग बोर्ड (एस.पी.बी.) जिला स्तर पर दो संस्थायें डिस्ट्रिक्ट प्लानिंग एवं कोआरडीनेशन समिति (डी.पी.सी.) तथा डिस्ट्रिक्ट प्लानिंग समिति का गठन किया गया। डी.पी.सी. का अध्यक्ष जिला परिषद सभापति तथा सदस्य सचिव कलेक्टर होता था। डी.पी.सी. में पंचायत समिति तथा म्युनिशपैलेटी के प्रतिनिधि भी होते थे। डी.पी.सी. जिला स्तर पर एक बहुत ही प्रभावशाली संस्था के रूप में प्रस्तुत हुई।

ब्लॉक स्तर पर एक ब्लॉक प्लानिंग कमेटी (बी.पी.सी.) होती थी। इसका अध्यक्ष ब्लॉक स्तरीय समिति का अध्यक्ष होता था एवं सदस्य सचिव के रूप में बी.डी.ओ. कार्य करता था।

स्थानीय नियोजन के तीन अवयव थे। जिला स्तरीय राज्य सरकार के विभागों के अधिकारी भी इसमें सम्मिलित थे। केन्द्र द्वारा प्रायोजित गरीबी निवारण एवं अनामित धन राशि का उपयोग करने तथा क्षेत्रीय नियोजन हेतु परियोजनाओं का निर्माण करने का कार्य इस स्तर पर किया जाता था। व्यवहार में इस स्तर पर प्रशासन का काफी प्रभाव दृष्टिगत होता था।

प्रत्येक जिले की योजनाऐं प्रायः अलग-अलग एवं कुछ विभिन्नता लिए होती थीं। जिला की क्षेत्रीय प्रयोजनाओं के असफलता का प्रमुख कारण सूचनाओं का आदान-प्रदान ठीक से न हो पाना था। जिसके कारण 1985-86 की योजना का निर्माण समय से नहीं हो पाया था। 1987-1988 में योजना निर्माण के लिए एक व्यवस्थित कैलेण्डर बनाया गया जिससे स्थिति में काफी सुधार हो गया।

कुछ जिलों ने योजना निर्माण के पहले दौर में ही अच्छा कार्य किया। 1990 के दशक में ग्राम सभा में भी समस्याओं को पहचानने तथा योजनाओं को क्रियान्वित करने का प्रयास होने लगा। इस प्रकार विकेन्द्रीकृत नियोजन का अनुभव पश्चिम बंगाल में 73वें संविधान संशोधन के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाने में काफी हद तक सहायक सिद्ध हुआ।

केरल में विकेन्द्रीकृत नियोजन

वर्तमान केरल प्रान्त त्रावणकोर एवं कोचीन दो प्रमुख रियासतों तथा मद्रास प्रान्त के मालाबार जिले को मिलाकर बनाया गया है। स्वतंत्रता के समय इस प्रान्त में त्रावणकोर पंचायत अधिनियम 1950 तथा मद्रास ग्राम पंचायत अधिनियम 1950 दोनों ही लागू थे।

बलवंत राय मेहता समिति के सुझावों के पश्चात् केरला पंचायत राज अधिनियम 1960 लागू किया गया। इसके तहत 1962 में सर्वप्रथम ग्राम स्तरीय चुनाव सम्पन्न हुये। काफी लंबे-लंबे अंतराल के बाद 1979 एवं 1988 में पुनः पंचायतों के चुनाव हुये। 1991 में जिला स्तरीय संगठन तब अस्तित्व में आया जब वाममोर्चा के सरकार ने डिस्ट्रीक्ट कॉउसिलों का गठन किया। किन्तु प्रान्तीय सरकार के 1991 में पतन के कारण ये कॉउसिलें कार्य करने में अक्षम हो गयीं। इस प्रकार पंचवर्षीय योजना के लिए जो प्रयास किया जा रहा था, अवरुद्ध हो गया।

यद्यपि केरल में अपने भूमि सुधारों, शत-प्रतिशत साक्षरता, शक्तिशाली स्थानीय संस्थाओं एवं जागरूक समाज के कारण प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण के लिए उर्वर भूमि तैयार थी। किन्तु विकेन्द्रीकृत नियोजन यहाँ पर एक दशक बाद ही प्रारंभ हो पाया। देश के अन्य प्रान्तों के सदृश ही 1970 में जिला नियोजन कार्यालय की स्थापना के पश्चात् विकेन्द्रीकृत नियोजन की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। 1980 में विशेष घटक योजना, आदिवासी उपयोजना इत्यादि के निर्माण के साथ इस प्रक्रिया ने गति पकड़ी। इस कार्य के लिए प्रत्येक जिले में एक कार्यदल गठित किया गया, जिसके अध्यक्ष जिला कलेक्टर और समन्वयक जिला योजना अधिकारी होते थे। यद्यपि इस कार्य का योजनाओं पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा किन्तु विभागीय नियंत्रण, पारदर्शिता के अभाव तथा धन का दुरूपयोग भी दृष्टिगत होता रहा।

विकेन्द्रीकृत नियोजन के अंतर्गत जिला विभागीय समितियों (डी.डी.सी) को अधिकतम प्रस्तावों को तैयार करके प्रेषित करने का कार्य सौंपा गया था। जिला स्तरीय समितियाँ, ब्लॉक नियोजन समिति और ग्राम पंचायत समितियों के सहयोग से योजनाओं का निर्माण करती थीं। जिला स्तर पर डी.डी.सी. तथा विकास खंड स्तर पर बी.पी.सी. के द्वारा योजनाओं का निर्माण किया जाता था। जिला अधिकारी समस्त कार्यक्रमों का प्रभारी बनाया गया था।

1993 में 73वां संविधान संशोधन पारित होने के बाद केरल में भी प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया अपनायी गयी। किन्तु विकेन्द्रीकृत नियोजन की दिशा में प्रयास वाम प्रजातांत्रिक मोर्चा (एल.डी.एफ.) की सरकार के 1996 में गठन के पश्चात् ही हो पाया। 1996 में गठित नवनिर्वाचित प्रजातांत्रिक मोर्चा सरकार ने 35 प्रतिशत से 40 प्रतिशत नवीं योजना के प्रांतीय कार्यक्रमों के निर्माण का कार्य स्थानीय संस्थाओं को सौंप दिया।

विकेन्द्रीकृत नियोजन हेतु जन आंदोलन

केरल में वाम प्रजातांत्रिक मोर्चा की सरकार गठित होते ही 17 अगस्त 1996 को विकेन्द्रीकृत नियोजन के लिए जन आंदोलन की शुरूआत की गई। यह जन आंदोलन छः चरणों में आयोजित किया गया था।

प्रथम चरण में जो अक्टूबर 1996 में प्रारंभ हुआ। ग्राम सभाओं को जाग्रत करके गांवों के आवश्यकता के अनुरूप कौन–कौन से संसाधन स्थानीय स्तर, पर उपलब्ध हैं, को जानने का प्रयास किया गया। इस चरण में जनता की सहभागिता उल्लेखनीय रही। विशेष रूप से महिलाओं एवं अन्य कमजोर वर्गों की सहायता के लिए उनकी सहभागिता पर विशेष बल दिया गया। इसके परिणामस्वरूप इन वर्गों की समस्याऐं प्रमुख रूप से उभरकर सामने आयीं।

द्वितीय चरण के अंतर्गत स्थानीय स्तर के द्वितीयक तथ्यों के संकलन, प्राकृतिक एवं भूगर्भ संसाधनों के अध्ययन पर चल रही योजना के अध्ययन, स्थानीय इतिहास के अध्ययन इत्यादि के पश्चात् प्रत्येक ग्राम सभाओं के प्रतिवेदनों के निर्माण का कार्य किया गया। इस प्रकार के प्रयासों से प्रत्येक गांव की एक विकास योजना प्रतिवेदन तैयार हो गयी। इसके पश्चात् समस्त प्रतिवेदनों को एकत्रित करके विषय विशेषज्ञों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों के साथ संगोष्ठियों का आयोजन प्रत्येक ग्राम सभाओं में किया गया। इस प्रकार प्रत्येक ग्राम सभा के जनता की सहभागिता एवं उनकी सहमति भी प्राप्त हो गई।

तृतीय चरण में जो दिसम्बर 1996 से मार्च 1997 तक चला क्षेत्र आधारित टॉस्क फोर्स का गठन किया गया। करीब 12 टॉस्क फोर्स प्रत्येक स्थानीय संस्थाओं में गठित किये गये। इस प्रकार गठित टॉस्क फोर्स में जनता की अधिकतम सहभागिता सुनिश्चित की गई। प्रत्येक टॉस्क फोर्स का अध्यक्ष एक निर्वाचित जन प्रतिनिधि भी हुआ करता था। प्रत्येक टॉस्क फोर्स निम्नांकित बिन्दुओं पर अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करती थी।

- कार्य की प्रासांगिकता,
- कार्य का उद्देश्य,
- लाभार्थी,
- गतिविधियाँ,

- संगठन,
- वित्तीय विश्लेषण,
- कुल लाभ,
- अनुश्रवण एवं मूल्यांकन।

चतुर्थ चरण में जो मार्च से मई 1997 के मध्य चला, ग्राम पंचायत एवं अन्य स्थानीय संस्थाओं के योजनाओं को अंतिम रूप देने का कार्य किया गया।

पंचम चरण में विकास खण्ड स्तरीय एवं जिला स्तरीय स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के द्वारा योजनाओं का निर्माण किया गया। इसमें प्रत्येक विकास खण्ड एवं जिला ने अपने विकास योजना प्रतिवेदन का निर्माण कर ऊपर की संस्थाओं में प्रेषित किया।

छठवें चरण में अधीनस्थ संस्थाओं द्वारा निर्मित योजनाओं का आंकलन किया गया और इसकी प्रक्रिया इत्यादि को देखते हुए उसे स्वीकृति प्राप्त करने हेतु प्रेषित किया गया।

इस प्रकार एक जबरदस्त जन-आंदोलन के द्वारा संपूर्ण केरल में विकेन्द्रीकृत प्रजातांत्रिक नियोजन प्रणाली को स्थापित करने में सफलता प्राप्त हुई है। इस कार्य को संचालित करने के लिए एक उच्च स्तरीय परामर्शदात्री समिति का गठन किया गया था। जिससे समस्त राजनैतिक दलों के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त आम जनता, विश्वविद्यालायों के कुलपति तथा विभिन्न संस्थाओं के विभागाध्यक्षों को सम्मिलित किया गया था। केरल के पूर्व मुख्यमंत्री श्री इ.एम.एस. नम्बुदरी पाद इस परिषद के अध्यक्ष थे। इस समति ने अपने कुशल मार्गदर्शन के द्वारा भावी योजनाओं के निर्माण के लिए भी पथ प्रशस्त किये। वर्तमान समय में प्रत्येक स्थानीय संस्थाओं में पूर्व की योजनाओं के पृष्ठ पोषण (Feed Back) के अनुभवों के आधार पर निरंतर नई योजनाओं का निर्माण किया जा रहा है। युनिसेफ ने यहाँ की प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया की काफी प्रशंसा किया है।

5
सूक्ष्म स्तरीय नियोजन

सूक्ष्म स्तरीय नियोजन विकेन्द्रीकृत नियोजन पद्धति का ही एक रूप है। यह एक कला है, जो अभ्यास से विकसित होती है। इसमें आम जनता भाग लेती है, अतः इसे जनता का नियोजन भी कहते हैं। इसके तहत सबकी सहभागिता होती है अतः इसे सहभागी नियोजन के नाम से भी जाना जाता है। जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है कि किसी कार्य को करने के लिए एक विस्तृत रूपरेखा या कार्य का सम्पूर्ण ढाँचा तैयार करना ही नियोजन है। सामाजिक जीवन में सामूहिक प्रयासों द्वारा किसी निश्चित उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। अतः नियोजन में सर्वप्रथम उद्देश्य या लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं, इसके लिये वर्तमान स्थिति तथा अपेक्षित स्थिति की तुलना की जाती है, तथा अन्तर देखा जाता है। यह अन्तर हमारे समक्ष समस्या के रूप में आता है। इन समस्याओं में से कुछ समस्यायें अधिक जरूरी होंगी तो कुछ कम। समस्याओं के प्राथमिकता के आधार पर उद्देश्य तय किये जाते हैं। इसके पश्चात् इन समस्याओं का समाधान ढूंढ़ते हैं। अनेक समाधानों में से संसाधनों की उपलब्धता तथा अन्य परिणामों को दृष्टिगत करते हुये किसी निश्चित समाधान के लिये कार्यक्रम बनाया जाता है और इस प्रकार प्राप्त कार्यक्रम के लिये एक कार्ययोजना तैयार की जाती है।

सूक्ष्म स्तरीय नियोजन का तात्पर्य

आम बोल-चाल में सामान्यतः "योजना" का तात्पर्य राष्ट्र में केन्द्र स्तर पर बनायी गयी सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लिये योजना से लगाया जाता है। विगत पचास वर्षों से हमारे देश में भी यही होता है। परन्तु वर्तमान समय में इस पद्धति की कमियों को देखते हुये अब इस बात पर बल दिया जाने लगा है कि योजना निर्माण की प्रक्रिया की शुरूआत सबसे छोटे स्तर या इकाई से होनी चाहिये तथा छोटी-छोटी इकाइयों की योजनाओं को जोड़कर बड़े स्तर की योजना बनायी जानी चाहिये। सूक्ष्म का तात्पर्य है "सबसे छोटा" इस प्रकार सबसे छोटे इकाई की योजना बनाने के कार्य को

ही सूक्ष्म स्तरीय नियोजन "माइक्रो लेवल प्लानिंग" कहते हैं। विकास के लिये विद्वानों का यह मानना है कि अलग–अलग कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिये अलग-अलग स्तर होने से अधिक लाभ होता है। जैसे तालाब बनाने का कार्य ग्राम स्तर पर ही हो सकता है, किन्तु नदी पर पुल या बाँध बनाने का कार्य संभवतः राज्य अथवा देश स्तर पर करना उचित होगा। किन्तु चाहे गांव स्तर का कार्य हो अथवा राष्ट्र स्तर का अन्ततोगत्वा प्रभाव छोटे स्तर की इकाई पर ही पड़ता है, अतः किसी बड़े कार्यक्रम के लिये छोटे स्तर से ही कार्यक्रम निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ करना ही सूक्ष्मस्तरीय नियोजन है।

वैसे देखा जाये तो सबसे छोटी इकाई व्यक्ति हो सकता है, पर हरेक व्यक्ति अपने लिये अपनी योजना बनाता है यह उसका निजी क्षेत्र है। जहाँ भी सामूहिक प्रयास की जरूरत पड़ती है, वहाँ उस समूह को जो सामूहिक स्तर की योजना बनाने के लिये प्राथमिक इकाई हो, उसे ही सूक्ष्म इकाई मानते हैं। ग्रामीण कार्यक्रमों में प्रायः ग्राम को प्राथमिक स्तर की इकाई माना जाता है। वैसे यह सूक्ष्मता सापेक्ष है। बहुस्तरीय नियोजन में जिला नियोजन, विकास खण्ड नियोजन एवं ग्राम नियोजन तीन स्तर हैं, अतः ग्राम को ही सूक्ष्म इकाई माना जाता है। इसी प्रकार मैक्रो नियोजन में जिला को ही सूक्ष्मस्तर माना जाता है। सूक्ष्म नियोजन निम्नांकित आधारों पर आधारित होता है।

लोक केन्द्रित बहुआयामी विकास

सूक्ष्मस्तरीय नियोजन आर्थिक विकास के साथ-ही-साथ सामाजिक न्याय पर आधारित होता है। इसके प्रत्येक इकाई, अपने स्तर पर अपनी संस्कृति एवं भावनाओं के अनुरूप विकास की प्राथमिकताओं का चयन करते हैं। अब यह माना जाने लगा है कि अलग संस्कृति के लोगों को अलग–अलग तरीके से जीने का अधिकार है। वर्तमान में जब सारी संस्कृतियाँ एक दूसरे में समाहित होती जा रही हैं। ऐसी परिस्थिति में लोक केन्द्रित बहुआयामी विकास सूक्ष्मस्तरीय नियोजन के माध्यम से संभव है।

लोक क्रियान्वयन पर आधारित

केन्द्रीकृत नियोजन की प्रमुख कमी यही है कि केन्द्र स्तर या प्रान्त स्तर निर्मित योजनायें स्थानीय स्तर पर क्रियान्वित नहीं हो पाती हैं। सूक्ष्म स्तरीय नियोजन स्थानीय आवश्यकताओं को दृष्टिगत करके बनाया जाता है। अतः योजना क्रियान्वयन पर प्रत्यक्ष लाभार्थियों का नियंत्रण होता है। योजना क्रियान्वयन पर स्थानीय स्तर के लोगों की पकड़ होने से संसाधनों का समुचित उपयोग होने के कारण क्रियान्वयन की सफलता में वृद्धि होती है।

लोगों को सशक्त बनाने में सहायक

केन्द्रीकृत नियोजन के कारण आम लोगों की शासन पर निर्भरता बढ़ी है तथा शासन भी स्वयं को लाभ देने वाला एवं लोगों को लाभार्थी मानता है। साथ ही उनको अज्ञानी एवं जागरूकता विहीन मानता है। आम जनता ने भी चूंकि यही मान लिया है अतः छोटे-छोटे कार्यों के लिये सरकार की तरफ देखती है। किन्तु सूक्ष्मस्तरीय नियोजन के कारण लोगों की सहभागिता बढ़ती है एवं लाभ सशक्त एवं आत्मनिर्भर बन जाते हैं।

सूक्ष्म स्तरीय नियोजन के आवश्यक चरण

नियोजन की आम सोच से जब हम एक खास सोच पर आधारित सूक्ष्मस्तरीय नियोजन की बात करते हैं तो नियोजन के चरणों में विशिष्टता आ जाती है। यह विशिष्टता आवश्यकता एवं उद्देश्यों के अनुरूप परिवर्तित होती रहती है। इसके प्रमुख चरणों का संक्षिप्त परिचय अग्रानुसार है–

गाँव जाने से पूर्व

गाँव जाकर योजना निर्माण कराने के पूर्व ग्राम से सम्बन्धित प्राप्य समस्त प्रकार के प्रारम्भिक एवं द्वितीयक तथ्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। यह जानकारी आगे की गतिविधियों के संचालन के लिये सहायक होती है।

गाँव में प्रवेश

लोक केन्द्रित विकास के लिये गांव वालों की नजर से गांव को जानना आवश्यक होता है। इसके लिये गाँव वालों के साथ सघन सम्पर्क स्थापित करके आत्मीयता बनाने का प्रयास किया जाता है। यद्यपि यह एक लम्बी प्रक्रिया है, जिसमें– सम्पर्क, आत्मीयता, लोगों का उनकी भूमिकाओं के अनुरूप कार्य करने हेतु प्रेरित करना प्रमुख गतिविधियाँ हैं। एक दूसरे से सम्पर्क स्थापित हो जाने पर आगे की गतिविधियाँ सहज हो जाती हैं।

त्वरित ग्रामीण आंकलन

इसके अन्तर्गत गाँव वालों की सहायता से समस्याओं की प्राथमिक जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। इससे समस्त गाँव के लोगों की सहभागिता के बजाय थोड़े से लोगों से जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। इन तथ्यों के आधार पर भविष्य में गलत जानकारियाँ प्राप्त करने से हम अपने आप को बचा सकते हैं।

प्रारम्भिक निष्कर्ष निकालना

द्वितीयक तथ्यों के संकलन एवं त्वरित ग्रामीण आंकलन के आधार पर भावी कार्य के लिये प्रारम्भिक निष्कर्ष निकाला जाता है। इस कार्य योजना के आधार पर ही सहभागी ग्रामीण अध्ययन संपादित किया जाता है।

वातावरण निर्माण

प्रथम सम्पर्क के पश्चात् से ही गाँव में नियोजन सम्बन्धी वातावरण का निर्माण किया जाने लगता है। यद्यपि यह काम कठिन होता है, जिसमें सभी प्रकार के वर्गभेद एवं मतभेद को दूर करके, टकराहट एवं तनाव की स्थितियों को संभालते हुये सबको एक साथ चलने के लिये तैयार किया जाता है, फिर भी प्रयास करने पर परिस्थितियाँ निश्चय ही परिवर्तित होती हैं।

सहभागी ग्रामीण अध्ययन

सूक्ष्मस्तरीय नियोजन का यह सबसे महत्वपूर्ण चरण है। इसमें सहभागी ग्रामीण अध्ययन की अनेकों पद्धतियों में से आवश्यकता एवं उद्देश्यों के अनुरूप कुछ पद्धतियों का प्रयोग करते हुये सहभागी विकास के लिये नियोजन की प्रक्रिया अपनायी जाती है। सहभागी ग्रामीण अध्ययन की तकनीकों का विस्तृत विश्लेषण आगे दिया गया है, जिनके द्वारा सहभागिता के आधार पर तथ्यों का संकलन किया जाता है।

विश्लेषण एवं विकल्पों की तलाश

सहभागी अध्ययन पद्धतियों के द्वारा प्राप्त तरह-तरह की जानकारियों के आधार पर समस्याओं के स्वरूप को ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है। इसके पश्चात् उपलब्ध संसाधनों के द्वारा समस्याओं के समाधान के अनेक विकल्पों की खोज की जाती है। इसके लिये गाँव के हर एक बड़े समूह के सामने सारी जानकारियों को रखा जाता है, फिर लोगों के बीच से विकल्पों को निकाला जाता है।

समस्या समाधान के लिये अनेक विकल्प यदि उभरकर आते हैं तो उनमें से किस विकल्प का चयन करना है, यह गाँव वालों पर छोड़ दिया जाता है। क्योंकि समस्या यदि उनकी है तो समाधान भी उन्हीं का होना चाहिये। यदि अतिरिक्त जानकारियों की कमी है तो बाहर वाले उसकी पूर्ति कर सकते हैं। क्रियान्वयन की सफलता के लिये अनेक विकल्पों में से किसी एक विकल्प को लेना उपयुक्त होता है।

संसाधनों का आंकलन

किसी भी कार्य को करने के लिये मुख्य रूप से दो प्रकार की वस्तुओं/संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है। एक है– भौतिक वस्तुयें जिसमें प्राकृतिक वस्तुओं के साथ-ही-साथ मानव निर्मित वस्तुयें भी समाहित हो जाती हैं। दूसरी है– मनुष्य जो श्रम के साथ-ही-साथ तकनीकी जानकारी का भी स्त्रोत है। उपरोक्त दोनों प्रकार के संसाधनों को प्राप्त करने के लिये धन की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि संसाधन तो सीमित हैं, किन्तु समुचित धन होने पर संसाधन जुटाये जा सकते हैं। जिनके पास आर्थिक संसाधन नहीं हैं वे भी विकास की प्रक्रिया में सम्मिलित हो सकते हैं। पहले वह स्वयं पहल करके गैर आर्थिक संसाधन जुटायें तथा अतिरिक्त धन के लिये संस्थाओं या सरकारी विभागों से सम्पर्क करने का प्रयास कर सकते हैं।

कार्य योजना

उपरोक्त आधार पर चयनित गतिविधियों को समयबद्ध करना ही कार्य योजना है। इससे यह स्पष्ट होता है कि कोई भी गतिविधि कितने समय तक चलेगी तथा एक समय में कौन–कौन सी गतिविधि चलेंगी। नीचे दी गई सारिणी के अनुसार चयनित कार्य की योजना को दर्शाया जा सकता है।

गतिविधियाँ	जनवरी	फरवरी	मार्च	अप्रेल	मई	जून	जुलाई
गतिविधि1							
गतिविधि2							
गतिविधि3							
गतिविधि4							
गतिविधि5							
संसाधन							

कार्ययोजना निर्मित हो जाने पर गतिविधियों के संचालन एवं नियंत्रण में तो आसानी होती ही है साथ–ही–साथ गाँव की सहभागिता भी आसानी से प्राप्त हो जाती है।

कार्यान्वयन की रणनीति

कार्यान्वयन की रणनीति के तहत निम्नांकित बातों को देखते हैं–

- ✦ अपनी क्षमता में निरन्तर वृद्धि कैसे हो ?
- ✦ हमारी कमजोरियाँ क्या हैं ?
- ✦ इन कमजोरियों को कैसे कम किया जा सकता है,
- ✦ बाधाओं को दूर करके अवसरों का फायदा कैसे उठाया जाये ?

विकास की प्रक्रिया की जटिलता को दृष्टिगत करते हुये तथा पारस्परिक जुड़ाव की आवश्यकता को परिलक्षित करते हुये सूक्ष्मस्तरीय नियोजन के माध्यम से तथा सबकी सहभागिता एवं तालमेल के द्वारा निश्चय ही विकास किया जा सकता है। इसे अनेक संस्थाओं ने कार्यरूप में परिणित करके दिखाया है। किन्तु सूक्ष्म स्तरीय नियोजन की सफलता इसी बात पर निर्भर करती है कि निर्णय सदैव सूक्ष्म स्तरीय इकाई का होना चाहिये जिसके लिये योजना का निर्माण किया जा रहा है।

●

6

सूक्ष्मस्तरीय नियोजन की संस्थागत व्यवस्था

ग्रामीण विकास या सतत विकास के लिये वर्तमान समय में सूक्ष्म स्तरीय नियोजन पद्धति को आवश्यक माना जाने लगा है। इसके अपनाने वालों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

- ✦ आत्म निर्भर इकाई,
- ✦ जागरूकता विहीन इकाई।

आत्म निर्भर इकाई वे हैं, जोकि अपने द्वारा विकास के लिये सजग हैं। वे सीधे बिना किसी संस्थाओं के सहयोग के सूक्ष्म स्तरीय नियोजन के माध्यम से विकास से सम्बन्धित कार्यक्रमों का क्रियान्वयन कर सकते हैं। किन्तु दूसरा वर्ग जो जागरूकता के अभाव के कारण अपने स्तर पर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये सक्षम नहीं है। जिम्मेदारी नहीं ले पाते हैं, उन्हें बाह्य संस्थागत सहयोग की आवश्यकता आत्मनिर्भर होने के लिये पड़ती है। इसके लिये उन संस्थाओं में तालमेल की आवश्यकता पड़ती है।

वस्तुतः विकास से सम्बन्धित कार्यों को करने में कठिनाइयों के कारण यह आवश्यक हो जाता है कि गाँव स्तर पर एक व्यापक सूक्ष्म स्तरीय नियोजन हो तथा सभी सम्बन्धित संस्थायें निर्मित योजना के अलग–अलग हिस्सों को आपसी सहयोग तथा तालमेल से क्रियान्वित करें। तभी सबके प्रयास से आवश्यक सकारात्मक परिवर्तन किया जा सकता है। सूक्ष्म स्तरीय नियोजन में सहायता प्रदान करने वाली संस्थाओं का विवरण तथा उनके सहयोग का स्वरूप संक्षेप में यहाँ पर प्रस्तुत किया जा रहा है।

अशासकीय या स्वयंसेवी संस्थायें

ग्रामीण विकास जैसे व्यापक क्षेत्र में गरीबी एवं बेरोजगारी जैसी कठिन समस्याओं का समाधान करने के लिये शासकीय प्रयास प्रायः अपर्याप्त सिद्ध होते रहे हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि ग्रामीण विकास के लिये किस प्रकार के सतत प्रयास की आवश्यकता पड़ती है, उसकी आशा शासकीय कर्मचारियों एवं अधिकारियों से करना व्यर्थ है। इसके साथ ही न केवल

शासकीय कार्यक्रमों में वित्तीय समस्यायें बाधा पहुँचाती हैं, अपितु नौकरशाही के ऊपर अन्य भी अनेक सीमायें होती हैं। अतः वे अकेले ग्रामीण पुर्नरचना का कार्य सम्पादित नहीं कर सकती हैं। इन समस्याओं के निराकरण में अशासकीय या स्वयंसेवी संस्थायें महत्वपूर्ण भूमिका अपने स्वरूप एवं कार्यप्रणाली के कारण निभा सकती हैं।

अत्यन्त प्राचीन काल से ही शासन के अतिरिक्त कुछ स्वयंसेवी संस्थायें होती थीं जो समाज के लिये कुछ विशिष्ट कार्य सम्पादित करती थीं, उस समय इनका मुख्य कार्य महामारी, भूकम्प, बाढ़ इत्यादि प्राकृतिक आपदाओं के समय धार्मिक उद्देश्य से सेवा एवं सहायता पहुँचाना था। भारत में गुरूकुल प्रणाली भी अशासकीय संस्थाओं का महत्वपूर्ण उदाहरण है। धीरे-धीरे वे समाज कल्याण के विविध क्षेत्रों में कार्य करने लगीं।

वर्तमान समय में अशासकीय संस्थाओं से तात्पर्य किसी भी ऐसी संस्था से है जो प्रशासनिक व्यवस्था से पृथक रहते हुये अपना संगठनात्मक स्वरूप गठित करके किसी निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिये कार्य करती हो। ग्रामीण विकास की व्यापक प्रक्रिया में शासन की पहुँच अनेक पहलुओं पर नहीं हो पाती है। अशासकीय संस्थायें इस रिक्तता को भरने का प्रयास करती हैं। ये संस्थायें कुछ मात्रा में उद्देश्यों पर केन्द्रित होते हुये मुख्यतः परिणामोन्मुखी होती हैं। वर्तमान समय में शासन भी अपने गरीबी एवं बेरोजगारी निवारण से सम्बन्धित ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में इन संस्थाओं के सहयोग की इच्छुक है।

वर्तमान समय में जबकि विकास का तात्पर्य केवल उत्पादन वृद्धि से ही न लगाकर मानव जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि करना माना जा रहा है, तथा शासकीय कार्यक्रमों को इस दिशा में सीमित ही सफलता मिल पायी है, ऐसे में अशासकीय संस्थायें जो धरातल तक पहुँच रखती हैं, सरकार को नयी रणनीति के तहत इन समस्याओं के निपटाने एवं अधिकतम सफलता अर्जित करने में सहयोग प्रदान कर सकती हैं। यही कारण है कि केवल भारत में ही नहीं वरन समस्त विश्व में स्वयंसेवी प्रयास बल पकड़ता जा रहा है। भारत में अशासकीय संस्थायें स्थानीय, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की भूमिका निभा रही हैं। अधिकांशतः ये संस्थायें गाँधीवादी अथवा चर्च के मिशनरी अवधारणाओं से प्रभावित होकर कार्य कर रही हैं। इनके कार्यों के आधार पर मुख्य रूप से इन्हें चार प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है-

1. सामान्य ट्रस्ट जो लोक कल्याणकारी राज्य के उद्देश्यों को पूरा करने में सहायक हैं।
2. ग्रामीण सहभागिता को प्रोत्साहित करके शासकीय कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में सहयोग देनी वाली संस्थायें।
3. जनता के कार्यक्रमों के नियोजन, संसाधनों के निर्माण, चयनित गतिविधियों के क्रियान्वयन तथा विकास के लाभ की प्राप्ति के लिये सहभागी बनाकर कार्य करने वाली संस्थायें।
4. जनता में विकास कार्यक्रमों एवं इसके लाभों को प्रदान करने हेतु जनजागृति पैदा करने वाली संस्थायें।

स्थानीय नेतृत्व से विकास कार्यक्रमों के उत्प्रेरक के रूप में कार्य करने की आशा की गई थी जो पूर्णतः सफल सिद्ध नहीं हो पायी है। वर्तमान समय में कुछ स्वयंसेवी संस्थायें स्थायी मानव संसाधन एवं अन्य संसाधनों को गतिशील करने तथा ग्रामीण क्षेत्रों में विकास एवं सामाजिक परिवर्तन लाने में "परिवर्ततन अभिकर्ता" की भूमिका निभाने में काफी सफल सिद्ध हुई हैं। इसी प्रकार कुछ अन्य स्वयंसेवी संस्थायें ग्रामीण टेक्नोलॉजी को संशोधित एवं परिवर्तित करके ग्रामीण विकास हेतु उपयोगी बनाने की दिशा में कार्य कर रही हैं। कुछ अन्य स्वंयसेवी संस्थायें निम्नांकित कार्यों पर विशेष बल दे रही हैं–

- कम लागत की वितरण प्रणाली विकसित करना।
- कम लागत के भवन निर्माण तकनीक का विकास करना।
- भारतीय एग्रो इण्डस्ट्रीज फाउण्डेशन पूना हाइब्रीड के दुधारू पशु, चारा विकास एवं सामाजिक वानिकी पर विशेष बल प्रदान करती है।
- भारतीय ग्रामीण महिला संघ, महिलाओं के आत्मनिर्भर एवं नेतृत्व विकास से सम्बन्धित प्रशिक्षण कार्यक्रमों का संचालन करती है।
- इसी प्रकार सर्वोदय श्रमदान आन्दोलन गाँधीवादी विचारों से प्रेरित होकर सामुदायिक विकास का अनूठा कार्यक्रम संचालित करती है। इसका मुख्य केन्द्र श्रीलंका है।
- भूमिसेना आन्दोलन ने महाराष्ट्र में आदिवासी विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया है।

- ✦ सोशल वर्क रिसर्च सेन्टर, तिलोनियां राजस्थान जो कि व्यावसायिक रूप से विविध क्षेत्रों में प्रशिक्षित युवकों का संगठन है, ने समग्र विकास की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है।
- ✦ इसी प्रकार दाशोली ग्राम स्वराज मण्डल चमोली, उ.प्र. ने वनसम्पदा संरक्षण, स्थानीय युवकों को रोजगार उपलब्ध कराना तथा ग्रामीण उद्योगों के प्रचार एवं प्रसार की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है।
- ✦ अन्ना जी हजारे के नेतृत्व में महाराष्ट्र में सैकड़ों आदर्श ग्रामों की स्थापना भी इसी दिशा में किये गये प्रयास हैं।
- ✦ राजस्थान के अलवर जिले में सूख गई नदी को पुन : प्रवाहित करके तरूण भारत संघ ने अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया है।

इस प्रकार स्वयंसेवी संस्थायें वर्तमान समय में बहुआयामी भूमिका का निर्वाह कर रही हैं।

अशासकीय संस्थाओं की सीमायें

यद्यपि अशासकीय संस्थायें अनेकों दिशाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं, किन्तु उन्हें अनेक समस्याओं का भी सामना करना पड़ रहा है। प्रमुख समस्या नेतृत्व की है। प्रायः सफल स्वयंसेवी संस्थाओं के संचालक धीरे-धीरे राजनीति में उतर जाते हैं, स्वयंसेवी सस्थायें करिश्माई नेतृत्व के कारण संचालित होती हैं तथा ज्योंही वह नेतृत्व इन संस्थाओं की गतिविधियों से पृथक होता है, इनका पतन होने लगता है। इसी प्रकार बहुत–सी संस्थायें किसी बड़े अधिकारी द्वारा लाभ को दृष्टिगत रखकर के निर्मित कर दी जाती है। उनमें से अधिकतर कागज पर अधिक एवं वास्तविक कार्यक्षेत्र में कम कार्य करती हुई दिखती हैं। इसी प्रकार धन एवं संसाधनों की भी सीमायें इन संस्थाओं की कार्यशीलता को प्रभावित करती हैं। एक अन्य सीमा यह है कि कभी भी स्वंय सेवी संस्थायें शासकीय भूमिका का विकल्प एक क्षेत्र विशेष तक ही हो सकती हैं।

अशासकीय संस्थाओं की कुछ प्रमुख सीमायें अग्रांकित हैं–

1. धन की अपर्याप्तता।
2. शासन एवं शासकीय अभिकरणों से सम्बन्धों के प्रति नकारात्मक सोच।
3. योग्य एवं दृढ़ प्रतिज्ञ कार्यकर्ताओं का अभाव।

4. लाभार्थियों का अपर्याप्त एवं मात्र संकेतिक सहभागिता।
5. स्थानीय नेताओं के हितों से संघर्ष।
6. ग्रामीण विकास प्रशासन की नौकरशाही से संघर्ष की स्थिति।
7. व्यावसायिक प्रवीणता एवं पर्याप्त सक्षमता के अभाव में परियोजना इत्यादि के निर्माण में कठिनाई।
8. सीमित क्षेत्र में ही सफलता।

स्वयंसेवी संस्थाओं के सशक्तीकरण के उपाय

ग्रामीण विकास की वर्तमान आवश्यकताओं को दृष्टिगत करते हुये यह महसूस किया जा रहा है कि अशासकीय संस्थाओं का सशक्तीकरण अत्यन्त ही आवश्यक है। इसके लिये निम्नांकित उपाय किये जा सकते हैं–

1. अशासकीय संस्थाओं की प्राथमिकतायें स्पष्ट होनी चाहिये तथा वे उन प्राथमिकताओं पर बल देवें।
2. स्वयंसेवी संस्थाओं को ऐसी परियोजनायें लेनी चाहिये जिनमें लाभार्थियों के लाभ के साथ-ही-साथ उनके भी आधारभूत संसाधनों में वृद्धि हो सके।
3. निर्माण कार्यों के सम्पादन में इन्हें शासन का सहयोग लेना चाहिये।
4. नियोजन के क्षेत्र में जनसहभागिता को बढ़ावा देना आवश्यक है।
5. स्वयंसेवी संस्थाओं एवं शासन दोनों को एक दूसरे के सहयोगी की भूमिका निभानी चाहिये।
6. जिन क्षेत्रों में शासकीय संस्थायें कार्य कर रही हैं, उन क्षेत्रों में ही कार्य करने से कार्य के दुहराव की प्रकृति पैदा होती है। स्वयंसेवी संस्थाओं को सीमित क्षेत्र में प्रादर्श खड़ा करने का प्रयास करना चाहिये।
7. विकेन्द्रित नियोजन के माध्यम से शासन द्वारा संचालित विविध गरीबी निवारण कार्यक्रमों का संचालन करना चाहिये।
8. इसी प्रकार सूक्ष्म स्तरीय नियोजन के द्वारा लाभार्थियों के वास्तविक पहचान में भी वे मदद कर सकती हैं।
9. शासन के द्वारा भी स्वयंसेवी संस्थाओं को धन विभिन्न राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से मुहैया कराने हेतु सहायता प्रदान की जा

सकती है। इसके साथ–ही–साथ शासन तकनीकी सहयोग भी प्रदान कर सकता है।

इस प्रकार अशासकीय संस्थाओं को शासन पर पूर्ण रूप से निर्भर होने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु एक दूसरे के सहयोग, कार्यों के समन्वय एवं परस्पर विश्वास के आधार पर ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों को समग्रता से क्रियान्वित कर सकती हैं।

स्वयं सहायता समूह

स्वयं सहायता समूह ग्रामों को पूर्ण एवं आत्मनिर्भर इकाई बनाने में वर्तमान समय में विकेन्द्रित नियोजन की सूक्ष्म इकाई के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। सूक्ष्म नियोजन की सबसे छोटी इकाई गांव है। आदर्श ग्राम के रूप में यह मानकर चला जाता है कि यह इकाई स्वयं पूर्ण एवं आत्म निर्भर होनी चाहिये। इसके लिये हर गांव को अपने पैर पर खड़ा होना चाहिये तथा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं करनी चाहिये। इस प्रकार स्वावलम्बन को महात्मा गाँधी ने एक प्रकार की सेवा माना है, क्योंकि स्वावलम्बी बनने पर व्यक्ति अपना अतिरिक्त समय दूसरों की सेवा में लगाता है। यदि सभी स्वावलम्बी बन जायें तो न तो किसी को भी कष्ट रहेगा और न ही किसी की सेवा करने की जरूरत। किन्तु मनुष्य जितना स्वावलम्बी है उतना ही परस्परावलम्बी भी है। परावलम्बन यद्यपि एक बुराई है, किन्तु एक समूह के सभी सदस्य परस्परावलम्बी होकर एक दूसरे का सहयोग करते हुए समग्र विकास के पथ पर अग्रसारित होने लगते हैं, तो यह परस्परावलम्बन ही स्वावलम्बन में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार के परस्परावलम्बी समूह को ही स्वयं सेवा समूह कहा जाता है। इस प्रकार स्वयं सेवा समूह सूक्ष्म स्तर का एक ऐसा समूह होता है, जो अपने समूह के सदस्यों, संसाधनों एवं क्रियाकलापों का प्रबन्धन इस प्रकार से करता है, जिससे कि सदस्यों की व्यक्तिगत कोशिश पूरे समूह को अपने उद्देश्य की प्राप्ति में सहायता प्रदान करती है।

स्वयंसेवी समूहों का समूह प्रबन्धन

सामान्य उद्देश्य वाले कई व्यक्तियों के संगठन को समूह कहा जाता है। सदस्यों के उद्देश्यों को लेकर समूह का उद्देश्य बनता है इन सदस्यों की सोच, विचारधारा, अनुभव एवं अपेक्षायें अलग-अलग होती हैं। समूह बनने के बाद अलग–अलग पृष्ठभूमि के इन सदस्यों को समूह हित में एक जुट

करना एवं सामूहिक कार्यों को करना समूह के स्थायित्व के लिये बहुत जरूरी है। समूह कार्यों का प्रबन्धन सुचारू रूप से न होने पर सदस्यों की अपेक्षाओं एवं समूह के उद्देश्यों में टकराव की स्थिति उत्पन्न होने लगती है, जो समूह को कमजोर करती है। समूह प्रबन्धन में निम्नांकित तत्वों का समावेश आवश्यक है–

- पारदर्शिता,
- समानता,
- अपनत्व की भावना,
- एकता,
- लोकतांत्रिक निर्णय प्रक्रिया,
- समूह में नेतृत्व प्रक्रिया।

स्वयं सहायता समूह के गठन की प्रक्रिया

(1) आवश्यक जानकारियों का संकलन

स्वयं सहायता समूह के गठन के पूर्व सहभागी आंकलन पद्धति (पी.आर.ए.मेथड) से समुदाय के साथ परिचय एवं सम्बन्ध स्थापित करके समुदाय के सम्बन्ध में निम्नांकित जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।

- समाज की सामाजिक आर्थिक स्थितियों की जानकारी।
- उपलब्ध संसाधनों, क्षमताओं, सुविधाओं तथा अवसरों की जानकारी।
- विद्यमान समस्याओं, अवधारणाओं एवं मुद्दों की जानकारी एवं प्राथमिकताओं का निर्धारण।
- जीवकोपार्जन के साधनों की जानकारी।
- बचत एवं ऋण की स्थितियों का आकलन।
- स्थानीय कार्यशील संस्थाओं की जानकारी।
- आय वृद्धि कार्यक्रम की संभावना जानना।
- स्वयं सहायता समूह के गठन की संभावना जानना, अर्थात् व्यक्तिवर्ग एवं समुदाय की पहचान करना।

(2) सामुदायकि जन–जागरूकता

किसी भी कार्य के पूर्व उस कार्य की जमीन तैयार करनी पड़ती है। स्वयं सहायता समूह के गठन के पूर्व भी सम्बन्धित ग्राम में सामुदायिक जन-

जागरूकता पैदा करनी पड़ती है। इसके लिये विकास अभिकर्ता को निम्नांकित कार्य सम्पन्न करना पड़ता है–

- ✦ चिन्हॉकित व्यक्तियों, कार्यों समुदायों के लिए प्रोत्साहन कार्यक्रम का निर्माण करना।
- ✦ समुदाय की रुचि एवं आवश्यकता के अनुसार जागरूकता कार्यक्रम तैयार करना।
- ✦ स्वयं सहायता समूह एवं उसकी गतिविधियों के विषय में समुदाय को आवश्यक जानकारी प्रदान करना।
- ✦ समुदाय को स्वयं सहायता समूह के माध्यम से सामाजिक एवं आर्थिक विकास हेतु उत्प्रेरित करना।
- ✦ समुदाय की शंकाओं एवं उठने वाले प्रश्नों का पूर्ण समाधान करना।
- ✦ संचार माध्यमों का सही तरीके से प्रयोग करना।

स्वयं सहायता समूह का गठन

जब समुदाय उपरोक्त प्रक्रियाओं से पूर्णतः उत्प्रेरित होकर समूह गठन के लिये तैयार हो जाये तब समूह का गठन कर दिया जाता है। इसके लिये निम्नांकित कार्य करने पड़ते हैं–

- ✦ समूह गठन हेतु व्यक्तियों का चयन।
- ✦ समूह का नाम सदस्यों द्वारा रखा जाना।
- ✦ समूह प्रतिनिधियों का चयन।
- ✦ समूह गठन प्रस्ताव तैयार करना।
- ✦ समूह की नियमावली तैयार करना।
- ✦ समूह की गतिविधियों को तय करना।
- ✦ बैंक में खाता खोलना।

समूह प्रबन्धन एवं कोष प्रबन्धन

(1) साझा कोष प्रबंधन

साझा कोष समूह के लेन-देन का स्रोत है, इसलिये इस कोष का प्रबन्धन समूह के विकास की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है, अर्थात् इसके लिये कौशल, आत्म-विश्वास और स्थिरता सभी की जरूरत होती है। कोष प्रबन्धन में निम्नांकित कार्य सम्पादित करना पड़ता है–

- निर्धारित सदस्य शुल्क प्रतिमाह संकलित करना चाहिये।
- शुरू के कुछ दिनों तक कोष को बराबर बढ़ाया जाता है।
- एक निश्चित सीमा तक पहुँचने के पश्चात् सदस्यों के उपयोग एवं आवश्यकताओं के अनुसार ऋण प्रदान किया जाने लगता है।
- ऋण किन शर्तों पर तथा भुगतान कितनी किश्तों में किया जाना है यह भी पूर्व में ही तय कर लिया जाता है।
- आपसी लेन-देन में पारदर्शिता रखनी चाहिये।
- स्वरोजगार कार्यक्रमों हेतु साझा कोष का अधिकाधिक प्रयोग किया जाना चाहिये।
- विवादों का हल आपसी विचार-विमर्श द्वारा किया जाना चाहिये।
- क्रमवार सदस्यों को ऋण दिया जाना चाहिये।
- समूह के गठन के 6 माह बाद नजदीक के बैंक में निश्चित धन जमा हो जाने के बाद ऋण दिया जा सकता है।
- अपना कोष कम होने पर ऋण लेकर भी ऋण दिया जा सकता है।
- कोष के रखरखाव के लिए कार्यकर्ता के अतिरिक्त सचेतकों का चयन किया जाना चाहिये जो पहले स्वयं प्रशिक्षित होकर पुनः लाभार्थियों को आवश्यक जानकारी एवं मार्गदर्शन उपलब्ध करा सकें।

(2) धन प्रबन्धन

धन प्रबन्धन का तात्पर्य समूह द्वारा बचत तथा अन्य स्त्रोतों से प्राप्त पूंजी के हिसाब-किताब का रख-रखाव, आन्तरिक एवं बाह्य ऋण द्वारा उसका उपयोग, ऋण की वापसी तथा सम्पूर्ण आय-व्यय का ब्यौरा तैयार करने से है, इसके अर्न्तगत मुख्य रूप से निम्न कार्य सम्मिलित हैं–

- साझा कोष की स्थिति का नियमित लेखांकन।
- साझा कोष के प्रबन्धन हेतु आवश्यक अभिलेखों का रखरखाव।
- आडिट अंकेक्षण।

इसके लिये निम्नांकित रजिस्टरों को तैयार करना पड़ता है–

- उपस्थिति रजिस्टर / कार्यवाही रजिस्टर।

- बचत रजिस्टर, बचत खाता, लेजर बुक।
- सदस्यों की पासबुक।
- बैंक पासबुक तथा प्राप्ति एवं भुगतान की रसीदें।

धन प्रबन्धन में पूर्णतः पारदर्शिता होनी चाहिये। नियमित आंतरिक ऋण आदान-प्रदान करना तथा उनकी वापसी भी नियमित रूप से होनी चाहिये। नियमावली का पूर्णतः प्रयोग एवं सामूहिक नेतृत्व के विकास पर बल दिया जाना चाहिये। प्रयास होना चाहिये कि समस्त निर्णय लोकतांत्रिक निर्णय प्रक्रिया से ही हों, जिससे समूह में सौहार्द का वातावरण बना रहे।

(3) समूह प्रबन्धन

स्वयं सहायता समूह में धन प्रबन्धन के पश्चात समूह प्रबन्धन का विशेष महत्व है। समूह प्रबन्धन के अर्न्तगत समूह के सदस्यों द्वारा अपने संसाधनों एवं समूह के क्रियाकलापों का इस तरह से प्रबन्धन होना चाहिये कि सदस्यों की व्यक्तिगत कोशिश पूरे समूह को अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में मदद कर सके। समूह प्रबन्धन की प्रमुख प्रक्रियाएं निम्नांकित हैं–

3.1 नियमित बैठक

एक से अधिक लोगों का एक जगह बैठकर किन्ही उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु आपसी चर्चा को बैठक कहा जाता है। बैठक में निश्चित अवधि के बाद होने वाले इस चर्चा में विचार, सोच एवं अनुभवों का आदान-प्रदान होता है। हर सदस्य बैठक में समूह संचालन एवं उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु विचार-विमर्श करता है। बैठकें निर्णय लेने एवं निर्णयों को क्रियान्वित करने हेतु एक महत्वपूर्ण आधार एवं मंच है।

3.1.1 बैठक का समय एवं स्थान

बैठक करने के लिये एक सामूहिक स्थान एवं पूर्व निर्धारित समय का होना आवश्यक है। बैठक के संचालन के लिए एक निष्पक्ष स्थान का होना आवश्यक है, जैसे– कोई मन्दिर का प्रांगण, प्राइमरी पाठशाला अथवा किसी पेड़ के नीचे जहाँ सदस्यों को आने में संकोच न हो। समूह गठन प्रक्रिया के साथ ही समय एवं स्थान नियत हो जाना जरूरी है। यह सदस्यों के साथ विचार-विमर्श करने के उपरान्त ही तय होता है। इसके लिए समूह को पूर्ण स्वाधीनता मिलनी चाहिये। यह अनिवार्य रूप से समूह के सदस्यों द्वारा आपसी सहमति से किया जाना चाहिये।

3.1.2 बैठक हेतु एजेण्डा

बैठक हेतु एजेण्डा बनाया जाना आवश्यक है। एजेण्डा में समूह को अपनी आवश्यकतानुसार बिन्दुओं को सम्मिलित करना चाहिये। सामान्यतः बचत समूह निम्न बिन्दुओं पर नियमित रूप से विचार-विमर्श एवं कार्यवाही करें–

- सामूहिक बचत राशि इकट्ठा करना।
- आपसी लेनदेन।
- समूह के लेखा–जोखा का हिसाब।
- कार्यों की समीक्षा।
- व्यक्तिगत एवं सामूहिक समस्याओं का समाधान।
- समूह के कार्यों के लिए भावी कार्य योजना एवं रणनीति तैयार करना।

3.1.3 बैठक में नियमितता

सामूहिक बैठक में नियमितता होना, अथवा एक निश्चित अंतराल के बाद सामूहिक बैठक का होना अत्यन्त जरूरी है। बैठक साप्ताहिक, पाक्षिक अथवा मासिक हो सकती है। बैठकों में अंतराल सदस्यों की सहमति से तय होना चाहिये। नियमित बैठकों से–

- बचत, आन्तरिक ऋण, आन्तरिक ऋण वापसी भी नियमित होती है।
- सामूहिक भावना सुदृढ़ होती है।
- सामूहिक प्रक्रिया मजबूत होती है।
- सदस्यों की ऋण माँगें पूरी होती हैं।
- उत्तरदायित्वों के निर्वहन में आ रही परेशानियों को सुलझाने में आसानी होती है।
- नियमित कार्य समीक्षा से समूह के कार्य अच्छे ढ़ग से सम्पादित होते हैं।

3.1.4 बैठक में सहभागिता

सभी सदस्यों का समूह की बैठक में उपस्थित रहना अनिवार्य है जिससे–

- सामूहिक निर्णय में सारे सदस्यों की सहमति ली जा सके।

- कोई भी निर्णय जो समूह के हित में लिया जाता है, उसकी जानकारी सभी को हो।
- समूह की आर्थिक स्थिति जैसे कुल बचत, कुल अंतः ऋण, अतःऋण वापसी एवं कुल पूंजी की जानकारी होती रहे।
- समूह के कमजोर पहलुओं को सशक्त बनाया जा सके।
- सदस्य एक दूसरे की समस्याओं के बारे में अवगत हो सकें एवं एक दूसरे की मदद कर सकें।
- सामुदायिक विकास कार्यों का नियोजन एवं क्रियान्वयन हो सके।

3.1.5 बैठक का संचालन

बैठक से पूर्व, बैठक के स्थान एवं समय के बारे में प्रतिभागी सदस्यों को सूचना होनी चाहिये, जिससे कि सारे सदस्य सही समय पर उस स्थान पर एकत्रित हो सकें। अगर समय एवं स्थान पूर्व निर्धारित हो तो उसे हर बार बदलने की आवश्यकता नहीं रहती एवं हर बार बैठक से पहले सदस्यों को सूचित करने की भी आवश्यकता नहीं रहती है।

बैठक आरम्भ करने के पूर्व बैठकों के संचालन के लिए एक व्यक्ति को चुना जाना चाहिए जो कि समूह का प्रतिनिधि, कोई सदस्य या फिर गांव के कोई सम्मानित व्यक्ति हो सकते हैं। संचालन की जिम्मेदारी प्रत्येक सदस्य को मिलनी चाहिये, जिससे कि वे इस कार्य को सीख सकें। प्रायः समूह बैठक की शुरूआत एक समूह गीत से आरम्भ होती है। यह समूह गीत प्रार्थना अथवा लोकगीत हो सकता है। इस तरह सांस्कृतिक कार्यक्रम से मनोरंजन भी होता है, एवं समूह के कार्यों में इच्छा एवं एकाग्रता बढ़ती है।

बैठक किसी भी बिन्दु से आरम्भ हो सकती है। बैठक के समय हर सदस्य को अपनी बात कहने का पूरा अधिकार होता है। यह दूसरे सदस्यों की जिम्मेदारी है कि जब कोई अपनी बात कह रहा हो तो सब उसकी बात को ध्यान पूर्वक सुने एवं उसकी राय को सम्मान दें। उसके विचार पर आ रही शंकाओं को बाद में पूछकर हल किया जा सकता है।

कुछ समूह माह में तीन या चार बैठकें करते हैं। इन बैठकों में मुद्दे अलग-अलग होते हैं।

- समूह की बचत इकट्ठा करने के लिये।
- समूह की आर्थिक स्थिति सम्बन्धित।

- ✦ सामूहिक कार्य सम्बन्धित।
- ✦ एक आम बैठक जिसमें सांस्कृतिक कार्यक्रम के जरिये आपसी सम्बन्धों को मजबूत किया जाता है एवं सामूहिक गतिविधियों का प्रचार भी होता है।

बैठक में विचार किये गये बिन्दुओं तथा लिये गये निर्णयों की कार्यवाही विवरण रजिस्टर में लिखना चाहिए तथा सभी सदस्यों के हस्ताक्षर होने चाहिए। बैठक खत्म करने से पहले अगले बैठक के लिए विचार बिन्दु तय कर लिये जाने चाहिये।

3.2 नियमावती बनाना एवं लागू करना

किसी भी संस्था या समूह के सफल संचालन हेतु एक नियमावली की आवश्यकता होती है। यह नियमावली मुख्यतया: संस्था या समूहों के उद्देश्यों की प्राप्ति तथा सभी समूह सदस्यों के हितों की रक्षा हेतु स्पष्ट कार्य प्रणाली निर्धारित करती है। किसी भी अच्छी नियमावली की मुख्य विशेषता उसका लचीलापन होता है। जिसके फलस्वरूप नियमावली में समयानुकूल परिवर्तन करना सम्भव होता है। स्वयं सहायता समूहों के लिये किसी नियमावली का निर्माण सदस्यों की आवश्यकता, स्वभाव, आदतों, पेशा, आय तथा उनमें बचत करने की क्षमता के आधार पर ही निर्धारित की जाती है। परन्तु उपरोक्त तथ्य सभी स्थानों पर समान नहीं होते तथा स्थानीय परिस्थितियों से प्रभावित होते हैं। समूह की नियमावली समूह को ही बनानी चाहिये, जिससे समूह के उद्देश्यों की प्राप्ति तथा सदस्यों के हितों की रक्षा सुनिश्चित की जा सके। नियमावली के निर्माण में सदस्यों की भागीदारी से मुख्य लाभ यह होता है कि समस्त सदस्य समूह के नियम कानून से भली-भाँति परिचित हो जाते हैं जो समूह को स्थिरता प्रदान करने में सहायक होते हैं।

3.2.1 सामूहिक खाता एवं उसका संचालन

1. बैंक में समूह का सामूहिक खाता खोला जायेगा। बचत एवं ऋण समूह का बैंक खाता समूह के अध्यक्ष और कोषाध्यक्ष के सम्मिलित नाम से चलाया जायेगा। मासिक बचत, पुनः भुगतान जमा करने व निकलवाने का कार्य समूह के सभी सदस्यों की सर्वसम्मति से प्रस्ताव करके अध्यक्ष / कोषाध्यक्ष द्वारा किया जायेगा।
2. समूह प्रतिनिधियों के बदलने की सूचना बैंक को उपलब्ध करायी जायेगी तथा खाता संचालन का परिवर्तन तदानुसार किया जायेगा।

3.2.2 एक गाँव के सभी समूहों की आम सभा

प्रत्येक समूह की वार्षिक सामान्य सभा के पश्चात् गाँव के सभी समूहों की एक वार्षिक सामन्य सभा हो, जिसमें सभी समूह मुख्यतया वर्ष में की गयी अपनी कुल बचत, वर्ष में कुल शुद्ध आय–क्रामिक शुद्ध आय/शासन तथा बैंक से प्राप्त ऋण की राशि तथा लाभांश का विवरण दें। इसमें जो समूह उतना अच्छा नहीं है, उनको अपना कार्य अच्छा करने के लिए प्रोत्साहन मिलेगा। इस वार्षिक सामान्य सभा में महिला तथा पुरुष पर्यवेक्षक, सहायक प्रबन्धक भाग लें तथा यह सभी वार्षिक सामान्य सभा, एस0 आई0 सी0 की बैठक के पहले या बाद में, परन्तु बैठक के दिन ही की जाये।

3.3 वार्षिक सामान्य सभा क्या है ?

वार्षिक सामान्य सभा एक ऐसी वार्षिक बैठक है, जिसमें बचत समूह के सभी सदस्य भाग लेते हैं और इस बैठक में वर्ष भर में किये गये कार्यों एवं प्रगति का विवरण ग्रुप लीडर द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। बैठक में आगामी कार्य योजना के संबंध में विचार–विमर्श करके समूह किन्हीं निश्चित निष्कर्षों तक पहुँच सकता है।

3.3.1 वार्षिक सामान्य सभा क्यों आवश्यक है ?

- ✦ समूह को आगे बढ़ाने के लिए यह जरूरी है कि समूह के सभी सदस्य मिलकर सोचें–विचारें और तदनुसार नियमित निर्णय सामूहिक सभा में लें। अतः इसके लिये वर्ष में एक बार बैठकर समूह के द्वारा की जानी चाहिए। इस बैठक में अभी तक जो कार्य हुए हैं, उसकी समीक्षा, उसमें जो कमियां रही हैं, उनको समझना और अगले वर्ष के लिए क्या करना है, इन सब के बारे में योजना बनायी जाए।
- ✦ उपर्युक्त कार्यों के लिए आवश्यक है कि वर्ष में एक बार एक सामान्य सभा का आयोजन हो, जिसमें सभी सदस्य भाग लें।
- ✦ प्रत्येक ग्राम के सभी समूह अपनी वार्षिक सामान्य सभा करके अपना विवरण एस0 आई0 सी0 में रखें और अपने अनुभवों का विवरण दें, तो सभी समूहों को आपस में एक–दूसरे से प्राप्त जानकारी का लाभ मिल सकेगा।

3.3.2 वार्षिक सामान्य सभा किस प्रकार होगी ?

- ✦ आम सभा के आयोजन के लिए बैठक में प्रस्ताव पारित किया जाना चाहिए कि किस दिन आम सभा होगी। बैठक अप्रैल माह में की जाये।

- आम सभा की बैठक से पूर्व सभी सदस्यों को समूह के ग्रुप लीडर व्यक्तिगत रूप से सूचित करेंगे कि वह आम सभा की बैठक में अवश्य आयें तथा इस बैठक की सूचना निगम के पर्यवेक्षक/पर्यवेक्षिका, सहायक प्रबन्धक व उप प्रबन्धक को भी दी जाए।
- आम सभा की बैठक के पूर्व वर्ष के आय-व्यय का विवरण ग्रुप लीडर द्वारा तैयार कर लिया जाए तथा स्वयंसेवी संस्था के लेखाकार से इसकी जाँच करा ली जाये।

3.3.3 वार्षिक सामान्य बैठक में लिये जाने वाले निर्णय

वित्तीय वर्ष में बचत की मासिक दर

स्वयं सहायता समूह में बचत की मासिक दर निर्धारित करने के लिए, वार्षिक सामान्य बैठक में खुलकर विचार-विमर्श करके सभी सदस्य आम सहमति से यह तय कर लें कि पूर्व के वित्तीय वर्ष के दौरान जो बचत दर थी उसे कितने रुपये प्रतिमाह तक बढ़ा सकते हैं, जिसे सभी सदस्य सुविधा पूर्वक मासिक रूप से जमा कर सकें। इस बात पर भी विचार-विमर्श कर लें कि रवी व खरीफ की फसल कटाई के समय वे मासिक बचत के अतिरिक्त कितनी धनराशि और जमा कर सकते हैं।

सदस्य को प्रशिक्षण

समूह के सदस्य यदि किसी प्रकार का आय अर्जन करने वाला कार्य करना चाहते हैं तो उसके लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी। बैठक में यह विचार करना होगा कि उन्हें पशुपालन पर प्रशिक्षण चाहिए या कृषि यंत्रों के रख-रखाव पर अथवा स्वयं वह व्यवसाय करना चाहता है, उस पर प्रशिक्षण चाहिए। इनकी सूची बना लें एवं सदस्य का नाम लिखें। इस पर भी विचार कर लें कि प्रशिक्षण कहां पर प्राप्त हो सकेगा व इस पर कितना खर्चा आयेगा। यह भी ज्ञात कर सकते हैं कि इस कार्य में निगम उन्हें कहाँ-कहाँ और क्या सहायता कर सकता है।

समूह विकास योजना

समूह द्वारा गत वर्ष जो विकास योजना बनायी गयी है, उसकी समीक्षा करके, चालू वर्ष के लिए, इस सभा में सबके सामने रख कर उसे अनुमोदित कराया जाये।

समूह संचालन

समूह द्वारा बैठकें, बचत, ऋण देना और किश्तें निर्धारित करने का कार्य, साप्ताहिक रूप से करने का निर्णय लिया जाये। साथ ही सदस्यों की बैठकें क्रमिक रूप से एक-एक सदस्य के घर पर हों अथवा किसी सार्वजनिक स्थल पर हो।

बकाया की वसूली

समूह के जिन सदस्यों के पास समूह से लिया हुआ उधार था और वह नियत समय पर उसका भुगतान नहीं कर सका, उसके बारे में आम सभा में यह फैसला किया जाये कि ऐसे बकायेदार सदस्य वह पैसा कितनी राशि की साप्ताहिक, पाक्षिक या मासिक किश्तों में अदा करेंगे अथवा वह पूरा पैसा एक मुश्त वापस करेंगे।

अन्य कोई विशेष बिन्दु

वार्षिक सामान्य बैठक में उपरोक्त बिन्दुओं के अतिरिक्त यदि कोई अन्य महत्वपूर्ण बिन्दु है तो समूह के सदस्य उस पर विचार कर सकते हैं, परन्तु इसके लिए सदस्यों की आपसी सहमति होना चाहिए।

सहकारी समितियाँ एवं सहकारिता

वर्तमान समय में सहकारी संगठनों के द्वारा ग्रामीण विकास का कार्य संपादित किया जा रहा है। सहकारी संगठन सूक्ष्म स्तर पर विकास कार्यों के साथ ही साथ सूक्ष्म स्तरीय नियोजन में भी जिला स्तर, विकास खंड स्तर एवं ग्राम स्तर पर सहभागिता निभाते हैं। किसी भी सहकारी संगठन के लिये निम्न तत्वों का होना आवश्यक है–

(1) स्वैच्छिक संघ

सहकारी संस्था की सदस्यता ऐच्छिक होती है अर्थात् प्रत्येक सदस्य को संस्था की सदस्यता स्वीकार करने और छोड़ने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है।

(2) लोकतंत्रीय

सहकारी समिति का प्रशासन लोकतंत्रीय ढंग से चलता है अर्थात् प्रत्येक सदस्य को एक मत प्रदान करने का अधिकार होता है चाहे उसने जितने अंश क्यों न खरीदे हों। 'एक व्यक्ति एक मत' वाला सिद्धान्त ही लागू होता है।

(3) पारस्परिक सहायता द्वारा आत्म सहायता

चूंकि सदस्यों के पास आर्थिक साधनों का अभाव है, अतः वे सभी मिलकर अपने साधनों को एकत्रित कर अपने उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं। अर्थात् 'एक सबके लिए' मुख्य सिद्धान्त है।

(4) सामान्य हित

सहकारी संघ सभी सदस्यों के कल्याण में वृद्धि का लक्ष्य लेकर बनाये जाते हैं। उनमें परस्पर प्रतिस्पर्धा का अभाव रहता है।

(5) नैतिक आधार

यद्यपि सहकारी संगठन भौतिक कल्याण के लिये बनाया जाता है लेकिन सहकारिता सदस्यों में मित्रता, सहयोगिता, सद्भावना और सदाचार को भी विकसित करती है।

(6) निश्चित विधान

सहकारी संगठन एक निगमित संस्था है। इसका रजिस्ट्रेशन सहकारी समिति अधिनियम के अर्न्तगत कराना पड़ता है। रजिस्ट्रेशन होने पर समितियों का लेखा परीक्षण समितियों के रजिस्ट्रार द्वारा करवाया जाता है। सहकारी संगठन के विधान द्वारा निश्चित लाभांश से अधिक हिस्सा अपने सदस्यों को नहीं बाँट सकते हैं।

(7) प्रतिस्पर्धा का लोप

समिति के सभी सदस्य सहयोग में विश्वास करते हैं। इससे एक छोटे क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा समाप्त हो जाती है। सब मिलकर काम करते हैं।

भारत में सहकारिता आन्दोलन का ढांचा

भारत में सहकारी आन्दोलन को दो भागों में बांटा गया है–

- साख समितियाँ,
- गैर साख समितियाँ।

साख समितियाँ साख प्रदान करती हैं। साख समिति को भी दो भागों में बांटा गया है–

(1) कृषि साख समितियाँ

ऐसी समितियाँ जो कृषि कार्यों के लिये साख प्रदान करती हैं, इन्हें प्राथमिक कृषि साख समितियाँ भी कहते हैं।

(2) गैर कृषि साख समितियाँ

वह समितियाँ जो अपने सदस्यों को गैर कृषि कार्यों के लिये साख प्रदान करती हैं।

गैर–साख समितियों का उद्देश्य अपने सदस्यों का आर्थिक व सामाजिक विकास करना होता है। इन समितियों को दो भागों में बांटा गया है–

गैर साख कृषि समितियाँ

वे समितियाँ जो कृषि से सम्बन्धित होती हैं, जैसे सहकारी कृषि विपणन समितियाँ।

गैर-साख गैर कृषि समितियाँ

ये समितियाँ जो कृषि से सम्बन्धित नहीं होतीं, जैसे– सहकारी उपभोक्ता भण्डार। किन्तु इन दोनों प्रकार की समितियों का उद्देश्य अपने सदस्यों का आर्थिक व सामाजिक विकास करना होता है।

साख समितियाँ

प्राथमिक साख समितियाँ

इन्हें कृषि साख समितियाँ भी कहते हैं। ये समितियाँ गांवों में पायी जाती हैं। हमारे देश में कृषि साख समितियों की स्थापना किसानों की आर्थिक अवस्था को सुधारने के लिये सन् 1904 में सहकारी समिति अधिनियम के अर्न्तगत की गई है।

प्राथमिक कृषि साख समितियों का संगठन

देश में प्राथमिक कृषि-साख समितियों का संविधान एवं संगठन इस प्रकार है–

(1) सदस्यता

कोई भी दस व्यक्ति जिनकी आयु 18 वर्ष से अधिक हो, मिलकर सहकारी साख समितियाँ खोल सकते हैं। सदस्यों की संख्या सौ से अधिक नहीं हो सकती है।

(2) पंजीयन

प्रत्येक सहकारी साख समिति का पंजोयन प्रान्तीय सहकारिता विधान के अर्न्तगत करना अनिवार्य है। पंजीयन निःशुल्क होता है।

(3) कार्यक्षेत्र

प्राय: एक गाँव में एक समिति होती है। इससे सदस्यों में आपसी सहयोग एवं सम्पर्क रहता है।

(4) प्रजातंत्रीय प्रबन्ध

समिति का प्रबन्ध प्रजातंत्रीय प्रणाली के आधार पर सदस्यों द्वारा ही होता है जो अवैतनिक होते हैं। प्रत्येक सदस्य को केवल एक वोट देने का

अधिकार होता है। चाहे उसके पास सहकारी समिति के कितने ही शेयर्स क्यों न हों। प्रबन्ध के लिये दो समितियाँ हैं–

(अ) साधारण सभा – इसमें समिति के सभी सदस्य होते हैं। इस सभा के मुख्य कार्य इस प्रकार हैं– प्रबन्ध समिति को चुनना, सेक्रेटरी की नियुक्त करना, बजट पास करना, रजिस्ट्रार और आय व्यय निरीक्षक की रिपोर्ट पर विचार करना, ऋण सम्बन्धी नियम बनाना, समिति के नियमों में आवश्यकतानुसार संशोधन करना आदि।

(ब) प्रबन्ध सभा – इसमें समिति के सदस्यों द्वारा चुने हुये 5 से लेकर 9 तक सदस्य होते हैं। यह सभा दिन-प्रतिदिन के कार्यों का संचालन करती है।

(5) पूंजी प्राप्ति के साधन

ये समितियाँ निम्नलिखित दो साधनों से पूंजी एकत्रित करती हैं –

(i) आंतरिक साधनों से – इनमें अंश पूंजी, नये सदस्यों से प्राप्त प्रवेश शुल्क, सदस्यों के निक्षेप तथा सुरक्षित कोष सम्मिलित होते हैं।

(ii) बाह्य साधनों से – इनमें सहकारी ऋणों, गैर सदस्यों के निक्षेपों तथा केन्द्रीय और राज्य सहकारी बैंकों से प्राप्त ऋणों को सम्मिलित किया जाता है।

(6) दायित्व

इन समितियों के सदस्यों का दायित्व असीमित होता है, अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक ऋण के लिये उत्तरदायी होता है।

(7) केवल सदस्यों को ऋण

ये समितियाँ केवल अपने सदस्यों को ही ऋण देती हैं। ये ऋण मुख्यतः तीन प्रकार के कार्यों के लिये दिये जाते हैं–

- पुराने ऋण को चुकाने के लिये,
- उत्पादन कार्यों के लिये,
- अन्य कार्यों के लिये, जैसे विवाह आदि।

ऋण अधिकतर उत्पादन कार्यों के लिये दिये जाते हैं। ऋण देते समय कम से कम दो सदस्यों की जमानत भी ली जाती है। कुछ राज्यों में ऋण लेने वाले सदस्यों को अपनी भूमि जमानत के रूप में रखनी पड़ती है।

सहकारी समितियाँ मुख्यतः अल्पकालीन ऋण देती हैं। परन्तु विशेष परिस्थितियों में उनकी अवधि तीन वर्ष तक के लिये बढ़ायी जा सकती है। सभी प्रकार के ऋणों को किश्तों में चुकाने की सुविधा दी जाती है।

ऋणों पर ब्याज की दर विभिन्न राज्यों में अलग-अलग हैं।

(8) हिसाब-किताब की जाँच

सभी समितियों को एक निश्चित रूप में लेखों को रखना पड़ता है और इन लेखों का अंकेक्षण सहकारी विभाग के आडीटर द्वारा किया जाता है।

(9) लाभ का वितरण

प्रारम्भिक साख सम्पत्तियाँ अपने लाभ का एक अंश अनिवार्य रूप से प्रति वर्ष सुरक्षित कोष में डालती है और शेष लाभांश के रूप में अंशधारियों को बांट देती हैं। समितियों द्वारा दिये जाने वाले लाभांश की अधिकतम सीमा किसी भी राज्य में 10 प्रतिशत से अधिक नहीं है जो इस बात को स्पष्ट करती है कि सहकारी समितियों को लाभार्जन का माध्यम नहीं बनाया जा सकता।

(10) पंचायत

समिति व उसके सदस्यों के मध्य झगड़ों का निपटारा पंचायत द्वारा किया जाता है। इस व्यवस्था से मुकदमेबाजी कम हो जाती है और समय, शक्ति तथा व्यय बच जाते हैं।

(11) रजिस्ट्रार के आदेशों का पालन

प्रत्येक समिति 'सहकारी समिति अधिनियम' के अर्न्तगत रजिस्टर्ड होती है, इसलिये प्रत्येक समिति को रजिस्ट्रार द्वारा भेजे गए आदेशों का पालन करना अनिवार्य होता है। रजिस्ट्रार ऐसी समितियों को बन्द कर सकता है, जो अकुशल हैं, जिनका प्रबन्धक ईमानदार नहीं है अथवा जिन्हें घाटा रहता है।

सहकारी कृषि साख समितियों के लाभ

1. **साहूकारों व महाजनों से छुटकारा** – इन समितियों के द्वारा किसानों को ऋण उनकी आवश्यकता पर प्रदान किये जाते हैं। जिससे उन्हें साहूकारों या महाजनों से रुपया लेने की नौबत ही नहीं आती और वे इनके चंगुल के बाहर ही रह जाते हैं।
2. **सस्ते ब्याज पर ऋण मिलना** – कृषि सहकारी समितियों की स्थापना हो जाने के कारण किसानों को कम ब्याज दर पर सरलता से ऋण प्राप्त हो जाते हैं।

3. **सहकारिता की भावना को जन्म**– इन समितियों से पारस्परिक सहयोग के आधार पर कार्य करने की प्रेरणा मिलती है। अतः किसानों में सहकारिता की भावना का जन्म होता है।

4. **शैक्षणिक विकास की भावना जागृत होना** – कृषि सहकारी समितियों की स्थापना से किसानों में समिति के लेखे-जोखों को समझने की तीव्र इच्छा उत्पन्न होती है और वे शिक्षित होने का प्रयत्न करने लगते हैं।

5. **कार्यक्षमता में वृद्धि** – सहकारी समितियों के कारण किसानों का ज्ञान विस्तृत हो जाता है। इसलिये उनकी कार्यक्षमता में भी वृद्धि हो जाती है।

6. **उच्च जीवन स्तर** -- इनकी सहायता से किसानों का जीवन स्तर पहले से ऊपर उठ जाता है।

7. **अनुत्पादक व्यय पर रोक**– किसान प्रायः अनुत्पादक व्यय, जैसे शादी, ब्याह पर अधिक खर्च कर डालते हैं। किन्तु इन समितियों के सदस्य बनते ही वे फिजूलखर्ची को कम करने का प्रयत्न करने लगते हैं।

सहकारी कृषि साख समितियों के निम्नलिखित दोष हैं–

1. **साधनों का अभाव** – समितियों में आर्थिक साधनों का अभाव रहता है। ये समितियाँ अपनी पूंजी के लिये केन्द्रीय बैंकों अथवा सरकार पर अत्यधिक निर्भर रहती हैं। इस कारण अपने सदस्यों के साख की आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पातीं।

2. **अनुत्पादक ऋण**– प्रायः साख समिति के सदस्य अनुत्पादक कार्यों के लिये ऋण लेते हैं। जिसके कारण ये इन ऋणों की अदायगी नहीं कर पाते। इस कारण समितियों के कार्य-संचालन में अवरोध उत्पन्न होता है।

3. **ब्याज की ऊँची दर**– समितियों की ब्याज की दर गरीब किसानों के लिये ऊँची होती है।

4. **दोषपूर्ण व्यवस्था**– समिति के आय-व्यय का सही रूप से लेखा-जोखा नहीं लगाया जाता तथा उचित निरीक्षण भी नहीं होता। अतः भृष्टाचार को प्रोत्साहन मिलता है।

5. **सदस्यों में अशिक्षा**– समितियों के सदस्य निरक्षर होते हैं अतः वे कर्मचारियों की चालाकी से अनभिज्ञ होते हैं और समिति के कार्यों में रुचि नहीं लेते।
6. **ऋण की समय पर अदायगी न होना**– समिति के सदस्य उत्पादक कार्यों के लिये ऋण नहीं लेते फलतः उनकी भावी आय शून्य रहती है। जिसके कारण वे समय पर ऋण चुका नहीं पाते। इस कारण समितियों की सफलता में बाधा उत्पन्न होती है।

केन्द्रीय सहकारी बैंक

केन्द्रीय सहकारी बैंक प्रत्येक जिले में होता है। अतः इसे जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक कहते हैं। जिला सहकारी बैंकों की स्थापना सन् 1952 के सहकारी समिति अधिनियम के अन्तर्गत की गई थी। सामान्यतः प्रत्येक जिले के लिये एक सहकारी बैंक होता है। किन्तु राज्यों में अनेक जिलों के लिये एक ही सहकारी बैंक है।

सहकारी बैंकों के रूप

वाणिज्य बैंक

ये बैंक साधारण बैंकों की भांति कार्य करते हैं। इन बैंकों के स्वामी बैंकों के अंशधारी होते हैं। ये बैंक के नियमों का पालन नहीं करते। परन्तु प्राथमिक समितियों की सहायता करते हैं।

शुद्ध केन्द्रीय सहकारी क्षेत्र

प्रारम्भिक सहकारी समितियाँ इन बैंकों की सदस्य होती हैं। अन्य व्यक्ति इस प्रकार के बैंको के सदस्य नहीं हो सकते। भारत में इस प्रकार के बैंक बहुत कम हैं।

मिश्रित केन्द्रीय सहकारी बैंक

प्रारम्भिक समितियाँ तथा अन्य बैंक इस प्रकार के बैंक के सदस्य हो सकते हैं। भारत में इसी प्रकार के बैंकों की संख्या अधिक है।

केन्द्रीय सहकारी बैंकों की विशेषतायें

1. **कार्यक्षेत्र**– अलग-अलग प्रान्तों में इन बैंकों के कार्यक्षेत्र अलग-अलग होते हैं। जिस जगह जिले एवं तहसील में यह बैंक होता है उसका कार्यक्षेत्र भी वही क्षेत्र होता है।
2. केन्द्रीय सहकारी बैंक के अंशधारी बैंक की साधारण सभा के सदस्य होते हैं। हर एक सदस्य को एक मत देने का अधिकार होता है।

साधारण सभा अपने कुछ सदस्यों को संचालक मण्डल के लिये मनोनीत करती है। यही मण्डल बैंक के दैनिक कार्यों का संचालन करता है।

3. **सहकारी बैंक के पदाधिकारी**– सहकारी बैंकों का चेयरमैन उत्तर प्रदेश में प्रायः जिलाधिकारी होता है, किन्तु दूसरे प्रान्तों में चेयरमैन सरकारी कर्मचारी नहीं होता। साधारण सभा का एक अवैतनिक मंत्री होता है। अन्य पदाधिकारियों में एक संचालक तथा एक प्रबन्धक होता है।

4. **पूंजी**– इन बैंको के पूंजी के निम्नलिखित स्त्रोत हैं–

- **जमा राशियाँ**– ये बैंक अपनी पूंजी का अधिकाशं भाग अपने सदस्य बैंकों एवं अन्य व्यक्तियों से प्राप्त करते हैं। यह पूंजी अल्पकालीन और दीर्घकालीन, दोनों समयावधियों के लिये प्राप्त की जाती है।
- **अशं पूंजी**– यह पूंजी सदस्य बैंकों से उनके ऋण की मात्रा के अनुसार हिस्सा खरीदने से प्राप्त होती है।
- **सुरक्षित कोष**– प्रत्येक केन्द्रीय सहकारी बैंक को कानून के अंतर्गत एक सुरक्षित कोष रखना पड़ता है जो वार्षिक लाभ का 25 प्रतिशत होता है।
- **ऋण लेकर**– यह राज्य सहकारी बैंक तथा अन्य बैंकों से आवश्यकता पड़ने पर ऋण ले सकता है।

5. **ऋण नीति**– केन्द्रीय सहकारी बैंकों से 7 प्रतिशत ब्याजं दर पर ऋण लेते हैं तथा सदस्यों के जमा धन पर 5 प्रतिशत ब्याज देते हैं। परन्तु यह ब्याज की दरें अलग–अलग प्रान्त में अलग–अलग हैं।

6. **लाभ का वितरण**– वार्षिक लाभ का 25 प्रतिशत सुरक्षित कोष में जमा करने के पश्चात् शेष का 6 से 10 प्रतिशत भांग सदस्यों में वितरित कर दिया जाता है, शेष धन राशि अन्य खातों में जमा कर दी जाती है।

7. **निरीक्षण व अंकेक्षण**– केन्द्रीय सहकारी बैंक के हिसाब–किताब का निरीक्षण रजिस्ट्रार तथा अन्य कर्मचारियों द्वारा होता है। आय–व्यय की जाँच लेखा परीक्षकों द्वारा की जाती है, जिनकी नियुक्ति रजिस्ट्रार करता है।

सहकारी बैंकों के निम्नलिखित कार्य हैं–

1. ये बैंक प्राथमिक समितियों के कार्यों की देखभाल करते हैं।
2. सहकारी समितियों को ऋण प्रदान करते हैं।
3. कुछ बैंक बाहरी व्यक्तियों को भी ऋण प्रदान करते हैं।
4. कुछ समय पूर्व ये बैंक भूमि क्रय करने के लिये ऋण दिया करते थे।
5. रजिस्ट्रार की अनुमति से ये बैंक दूसरे बैंकों को ऋण देते हैं।

केन्द्रीय सहकारी बैंकों की वर्तमान स्थिति

- किसी जिले में जितनी प्राथमिक समितियाँ होती हैं, वे सब उस जिले की केन्द्रीय सहकारी बैंक से सम्बद्ध होती हैं।
- 30 जून 1976 को केन्द्रीय बैंकों की कुल संख्या 344 थी। इसी समय इनके कार्यालयों की कुल संख्या 5,858 थी।
- केन्द्रीय बैंकों की जमा राशि का लगभग 6 प्रतिशत भाग व्यक्तियों से प्राप्त होता है। अतः बैंक जमाकर्ता और इससे रूपये उधार लेने वाले दो भिन्न वर्ग के व्यक्ति होते हैं।

राज्य सहकारी बैंक

प्रत्येक प्रान्त में एक राज्य सहकारी बैंक की स्थापना की गई है जो जिला सहकारी बैंकों की देख-रेख एवं उन्हें नियंत्रित करते हैं। सन् 1925 में मैकलेगन समिति ने इन बैंकों की स्थापना की सिफारिश की थी। उत्तर प्रदेश में सबसे पहले 1945 में इस प्रकार के बैंकों की स्थापना की गई।

1. संगठन– केन्द्रीय सहकारी बैंकों की भांति ही इन बैंकों का संगठन होता है। इन बैंकों का प्रबन्ध सामान्यतया संचालक-मण्डल द्वारा किया जाता है। संचालक मण्डल का पदाधिकारी रजिस्ट्रार होता है। वह कुछ संचालकों की नियुक्ति करता है।

2. राज्य सहकारी बैंकों की पूंजी – इन बैंकों की पूंजी

- अंश बेचकर,
- जनता से जमा प्राप्त करके,
- रिजर्व बैंक, अन्य बैंकों या सरकार से ऋण लेकर प्राप्त होती है।

3. **कार्य क्षेत्र**– इन बैंकों का कार्य क्षेत्र सम्पूर्ण राज्य होता है। इनके सदस्य –
   - सहकारी साख समितियाँ,
   - केन्द्रीय सहकारी बैंक और,
   - अन्य बाहरी व्यक्ति होते हैं।
4. **राज्य सहकारी बैंकों के कार्य**– इसके लिये निम्नलिखीत कार्य हैं–
   - केन्द्रीय बैंक सहकारी बैंकों को आर्थिक सहायता प्रदान करते हैं।
   - ये बैंक सहकारी बैंकों, सहकारी साख समितियों पर नियंत्रण रखते हैं।
   - ये बैंक राज्य के मुद्रा बाजार तथा सहकारिता आन्दोलन में समन्वय स्थापित करते हैं।
   - सभी प्रकार के जमा धनराशि सदस्य बैंकों, व्यक्तियों एवं संस्थाओं से प्राप्त करते हैं।

व्यापारिक बैंकों के अन्य कार्य– जैसे चेकों का भुगतान, रूपये की वसूली, धन का स्थानान्तरण आदि कार्य भी ये बैंक करते हैं।

गैर कृषि या नगर कृषि सहकारी समितियाँ

इस प्रकार की सहकारी समितियाँ साधारणतया कस्बों एवं नगरों में पायी जाती हैं। इन समितियों की संख्या अभी हमारे देश में कम है, क्योंकि देश के आर्थिक जीवन में अभी भी कृषि की ही प्रधानता है। इसका वर्तमान कलेवर इस प्रकार है–

1. **संगठन**– इन समितियों का संगठन सम्मिलित दायित्वों के आधार पर होता है। कोई भी दस सदस्य मिलकर इस प्रकार की समिति की स्थापना कर सकते हैं परन्तु कुल सदस्य संख्या 25 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिये।
2. **पूंजी**– ये समितियाँ अपनी पूंजी का अधिकांश भाग अंश बेचकर प्राप्त कर सकती हैं। प्रत्येक अंशधारी को एक वोट देने का अधिकार होता है।
3. **ऋण नीति**– ये समितियाँ साधारणतया उत्पादन कार्यों के लिये ऋण देती हैं। ऋण सामान्यतया दो वर्षों के लिये अथवा विशेष

परिस्थिति में तीन या पाँच वर्षों के लिये दिये जाते हैं। ऋण व्यक्तिगत जमानत तथा सोना-चाँदी आदि की जमानत पर दिये जाते हैं।

4. **प्रबन्धन**— समिति के प्रबन्धन के लिये एक साधारण सभा, प्रबन्धन सभा व कुछ वैतनिक कर्मचारी होते हैं।

5. **लाभ वितरण**— समिति सभा का कम से कम 25 प्रतिशत संचित कोष में रखा जाता है। शेष लाभ में से कुछ भाग सदस्यों के सामान्य हितों पर व्यय करके बाकी समस्त लाभ सदस्यों को बाँट दिया जाता है।

6. **रजिस्ट्रार का नियंत्रण**— रजिस्ट्रार द्वारा नियुक्त अंकेक्षक इनके हिसाब-किताब की जाँच प्रतिवर्ष करता है।

गैर साख समितियाँ

इसके पूर्व ही हम अध्ययन कर चुके हैं कि भारत में गैर साख समितियों का संगठन दो प्रकार का है–

1. कृषि गैर-साख समितियाँ,
2. गैर कृषि गैर-साख समितियाँ,

(1) कृषि गैर साख समितियाँ–

कृषि गैर-साख समितियों का कार्य किसानों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति को सुधारना है। ये समितियाँ मध्यस्थों को समाप्त करके अपने सदस्यों को लाभ पहुँचाती हैं। कृषि गैर-साख समितियों के प्रमुख उदाहरण निम्नलिखित हैं–

★ सहकारी कृषि विपणन समितियाँ–

- भारत में कृषि उपज विपणन के बीच अनेक मध्यस्थ पाये जाते थे जिसके कारण किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य नहीं प्राप्त होता था। अतः इन दोषों को दूर करने के लिये विभिन्न स्तर पर सहकारी विपणन समितियों का गठन किया गया है।
- **कृषि उपज के सहकारी विपणन का ढाँचा**— देश में राष्ट्रीय स्तर पर, एक राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन संघ है। प्रान्तों में इस समय इनकी संख्या 20 है। मंडियों के स्तर पर भी प्राथमिक विपणन समितियाँ हैं।

(2) सहकारी कृषि उत्पादन समितियाँ

कृषि क्षेत्र में उत्पादन करने वाली सहकारी समितियाँ बड़ी और छोटी दोनों रूप में स्थापित की गई हैं। उदाहरणार्थ सहकारिता के आधार पर चीनी मील या कताई मील की स्थापना। ये बड़े आकार की समितियाँ हैं। दूसरी श्रेणी में मध्यम व छोटे आकार की समितियाँ होती हैं। इसके अंतर्गत चावल मील, जूट मील, तेल मील तैयार करने वाली समितियाँ स्थापित की गई हैं।

(3) सहकारी उन्नत कृषि समितियाँ

ऐसी समितियों को कृषि के तरीके में सुधार करने के लिये गठित किया जाता है। कृषि औजारों का निर्माण और वितरण, कृषि सेवा केन्द्रों की सहकारिता के आधार पर स्थापित की गई हैं। ये समितियाँ उत्तम खाद, उत्तम बीज, अच्छे औजार की व्यवस्था करती हैं।

(4) सहकारी कृषि समितियाँ

भारत में जोत का आकार बहुत ही छोटा होने के कारण वैज्ञानिक ढ़ग से कृषि करना असंभव होता है। अतः जोत के आकार में सुधार करने के लिये तथा कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिये सहकारी कृषि समितियों की स्थापना की गई है। ये समितियाँ जोत के आकार को बड़ा करने के लिये चकबंदी जैसी नीतियाँ अपनाती हैं।

(5) सहकारी सिंचाई कृषि समितियाँ

ये समितियाँ अपने सदस्यों को सिंचाई की व्यवस्था करती हैं। ये समितियाँ सिंचाई के साधनों का विकास करती हैं।

गैर-साख गैर-कृषि सहकारी समितियाँ–

इसके उदाहरण निम्नांकित हैं–

(1) सहकारी आवास समितियाँ

आज के युग में बड़े-बड़े शहरों में आवास की समस्या दिन-प्रतिदिन, जटिल होती जा रही है। इस समस्या के समाधान के लिये सहकारी आवास समितियों की स्थापना की गई है। ये समितियाँ नागरिकों व श्रमिकों के लिये सस्ते दामों पर भवन निर्माण का कार्य करती हैं, तथा सड़क, नालियों की व्यवस्था कराती हैं। इन समितियों को सरकार से भी अनेक प्रकार की सहायता मिलती है। जैसे कम ब्याज दर पर ऋण, भवन निर्माण सामग्री की

सुगम उपलब्धि आदि। 30 जून 1975 को देश में लगभग 24000 प्राथमिक आवास समितियाँ थीं। जिनकी सदस्य संख्या 17.7 लाख थी। इन सहकारी समितियों ने लगभग 5 लाख आवासों का निर्माण किया।

(2) श्रम ठेका और निर्माण सहकारी समितियाँ

ये समितियाँ देश में उचित सदस्यों को मजदूरी और रोजगार दिलाने का कार्य करती हैं। (मध्यप्रदेश में छोड़कर)

ग्राम सभा

वर्तमान समय में सूक्ष्मस्तरीय नियोजन की संस्थागत इकाइयों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान ग्राम सभा का है। ग्राम सभा के सम्बन्ध में विस्तार से बताया जा चुका है अतः संक्षेप में यहाँ पर उसका विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

गाँव सभाओं की स्थापना अधिकतर ग्रामीण विकास प्रशासन के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किया गया है। ग्राम सभा में एक या एक से अधिक ग्रामों का ऐसा समूह जिसे राज्यपाल द्वारा रेवेन्यू ग्राम घोषित कर दिया जाता है, के 18 वर्ष से अधिक उम्र के समस्त व्यक्ति आते हैं। इस प्रकार ग्राम सभा के क्षेत्राधिकार के सभी बालिग स्त्री पुरुष मिलकर ग्रामीण विकास एवं प्रशासनिक कार्यों का संचालन करते हैं। ग्राम सभा के कार्यों के संचालन के लिये ग्राम पंचायतों का गठन किया जाता है।

ग्राम सभा की वर्ष में कम से कम चार बैठकें होती हैं। जिसमें वह नियोजन एवं विकास के कृत्यों का संपादन करती है। ग्राम सभा की एक वार्षिक बैठक होती है जो 31 मार्च से 3 महीने पहले बुलाई जाती है। इसी बैठक में आगामी वर्ष के लिए योजनाएं बनाने तथा इसके क्रियान्वयन के आवश्यक संसाधन जुटाने के लिए निर्णय लिये जाते हैं। इस संदर्भ में ग्राम सभा को निम्नांकित कार्यों को संपादित करना पड़ता है–

1. गाँव की उन्नति के लिये कौन-कौन-सी स्कीमें लागू की जानी चाहिये, यह तय करना और इनमें से कौनसी पहले लागू करना हैं इसके लिए योजना बनाना।
2. ग्राम पंचायत द्वारा योजनाएं लागू करने के पहले उन्हें मंजूरी देना।
3. ग्राम पंचायत के सालाना बजट पर विचार करना और उस पर अपनी राय देना।

4. ग्राम पंचायत के सलाना खाते पर और आडिट पर विचार करना।
5. गरीबी हटाने और दूसरे सरकारी कार्यक्रमों का फायदा किन लोगों को मिलना चाहिए, यह तय करना।
6. ग्राम पंचायत को सौंपी गई सामाजिक संस्थाओं पर पंचायत के जरिये नियंत्रण रखना।
7. गाँव के इलाके की जमीन, पानी, जंगल और खदानों की नियम के अनुसार देख-रेख करना।
8. तालाबों के उपयोग और उनके इंतजाम में ग्राम पंचायत को सलाह देना।
9. अगर जनपद और जिला पंचायत ग्राम पंचायत को कोई काम सौंपते हैं तो वह भी ग्राम सभा के विचार के लिये रखा जाता है।
10. अगर सरकार कलेक्टर या दूसरे अधिकारी के जरिये पंचायत को कोई काम सौंपती है तो वह भी ग्राम सभा की बैठक में विचार के लिए पेश किया जाता है।

इस प्रकार ग्राम सभाओं के द्वारा ग्राम स्तर पर वर्तमान समय में सूक्ष्म स्तरीय नियोजन करने की प्रक्रिया अपनायी जा रही है। 73वें एवं 74वें संविधान संशोधन के द्वारा वास्तविक रूप से ग्राम सभायें ही सूक्ष्म स्तरीय नियोजन की संस्था के रूप में उभर कर आयी हैं। मध्य प्रदेश में पंचायती राज एवं ग्राम स्वराज अधिनियम 2001 के लागू होने के पश्चात् ग्राम सभा की स्थिति में आये परिवर्तनों को पृथक से अगले अध्याय में प्रस्तुत किया जायेगा।

7
सहभागी ग्रामीण समीक्षा (पी.आर.ए)

सहभागी ग्रामीण समीक्षा का उद्भव एवं विकास

सहभागी ग्रामीण समीक्षा पद्धति का सर्वप्रथम प्रयोग "चांग मे खोन के" विश्वविद्यालय, थाइलैण्ड में हुई थी। विकास कार्यक्रमों में समुदाय की भागीदारी प्राप्त करने के लिए इस प्रविधि को अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण विकास संस्थान लंदन द्वारा प्रचारित एवं प्रसारित किया गया। इस पद्धति से कम समय एवं कम खर्च में ग्रामीणों को उनके हित की अभिव्यक्ति तथा उसको प्राप्त करने हेतु आपसी सहयोग, परस्पर उत्तरदायित्व एवं योजना निर्माण में उनके अपने योगदान जैसे मौलिक तत्व को प्रतिष्ठित करने में मदद मिली। सहभागी पद्धति के विकास को एक नजर में निम्नानुसार प्रस्तुत किया जा सकता है–

1950–60	तकनीकों का हस्तांतरण।
1970	कृषि विश्वविद्यालयों में त्वरित ग्रामीण आंकलन (RRA) का प्रयोग
1975–80	रावर्ट चेम्बर्स के द्वारा सहभागी ग्रामीण समीक्षा (PRA) की विधियों का निर्माण एवं प्रचार-प्रसार।
1980–90	रावर्ट चेम्बर्स के पी.आर.ए. एवं पाउलोफाइरे की (Empowerment through literacy) विधियों को मिलाकर डेविड आर्थर द्वारा रिफलैक्ट (RELECT) का निर्माण।
1990	के पश्चात् सामुदायिक सशक्तिकरण के लिए सहभागी अधिगम व क्रिया विधियों (PLAM) का प्रयोग।

सहभागिता

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् एशिया एवं अफ्रीका के नवोदित स्वतंत्र राष्ट्रों के द्वारा देश के अंतर्गत संरचनात्मक एवं अन्य विकास कार्यों के लिए केन्द्रीकृत नियोजन पद्धति अपनायी गयी, किन्तु कुछ ही समय पश्चात् यह तथ्य उभर कर आने लगा कि इस प्रकार की निर्मित योजनाओं में जनसहभागिता

का अभाव रहा है। इसके अंतर्गत नियोजकों व विकास कर्मियों द्वारा समुदाय को विश्वास में लिए बगैर कार्यक्रमों का निर्धारण एवं क्रियान्वयन किया गया, जिसके परिणामस्वरूप इन कार्यक्रमों में लोगों का जुड़ाव नहीं हो पाया। धीरे-धीरे यह माना जाने लगा कि एक नीचे से ऊपर पहुंचने वाली विकेन्द्रीकृत सोच की आवश्यकता है। इसके लिए समस्या की पहचान से लेकर आंकड़े एकत्रित करने एवं उनका विश्लेषण करके नियोजन, क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन के प्रत्येक स्तर पर स्थानीय लोगों को शामिल करने एवं निर्णयों में उनकी सहभागिता सुनिश्चित करने पर ही कार्यक्रमों की सफलता निर्भर करती है।

सामान्यतः सहभागिता का तात्पर्य मुख्य रूप से तीन अलग-अलग दृष्किोण से लगाया जाता है। पहले दृष्टिकोण में सहभागिता का इस्तेमाल मात्र बाहर से लाये गए कार्यक्रमों को लागू करने में किया जाता है। दूसरे स्तर में सहभागिता का प्रयोग नीति नियोजक एवं निर्णयों को प्रभावित करने में किया जाता है। तीसरा स्तर जो वर्तमान में अधिक प्रचलित हुआ है तथा जिसके अनुसार समाज की निर्णयों एवं संसाधनों तक पहुँच तो सुनिश्चित की ही जाती है साथ ही साथ उनके सशक्तीकरण के लिए उन्हीं के माध्यम से नियोजित कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने के साथ उनका मूल्यांकन भी किया जाता है।

इस प्रकार वर्तमान समय में बहुस्तरीय नियोजन की प्रक्रिया में नियोजन को आधारभूत स्तर की वास्तविकताओं तक ले जाने के लिए योजना के उद्देश्यों को तय किया जाना, शोध, सर्वेक्षण, योजना निर्माण, क्रियान्वयन, मूल्यांकन इत्यादि प्रत्येक स्तर पर लाभार्थियों का सक्रिय शारीरिक, मौखिक एवं भावनात्मक जुड़ाव पैदा करने की प्रक्रिया ही सहभागिता है। इसके लिए सहभागी ग्रामीण समीक्षा पद्धतियाँ पूर्णतः सहायक सिद्ध हुई हैं।

तथ्यों के आंकलन की परम्परागत पद्धतियाँ

नियोजन के लिए तथ्यों की आवश्यकता होती है। उनका संकलन प्रारम्भ में प्रश्नावली, साक्षात्कार या अनुसूची प्रविधियों के माध्यम से निदर्शन का प्रयोग करते हुए कर लिया जाता था। इसके अंतर्गत अधिकांशतः बन्द प्रश्न होते थे एवं उनके संख्यात्मक एवं प्रतिशत इत्यादि के रूप में सांख्यिकीय विश्लेषण प्राप्त होते थे। इनमें अलग-अलग व्यक्तिगत रूप से संकलनकर्ताओं से संपर्क करना पड़ता था। यदि निदर्शित समूह अशिक्षित होता था तो उनसे मौखिक प्रश्न ही किया जाता था। इन प्रविधियों की एक सबसे बड़ी कमी यह थी कि यदि उत्तरदाता सही उत्तर नहीं देना चाहता तो उसके द्वारा दिये

गये सूचनाओं की गलतियों का सत्यापन करना कठिन हो जाता था। इस प्रकार परम्परागत पद्धतियां केन्द्रीकृत नियोजन में सहायक रहीं, किन्तु विकेन्द्रीकृत नियोजन प्रक्रिया के लिए उपयुक्त सिद्ध नहीं हो पाई हैं।

सहभागी ग्रामीण समीक्षा पद्धति (पी.आर.ए.)

इस पद्धति में पूर्णतः खुले प्रश्न होते हैं और प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण अनुमान के आधार पर समूह के साथ ही किया जाता है। इसमें शिक्षित एवं अशिक्षित दोनों ही प्रकार के लाभार्थी सम्मिलित होते हैं। इस पद्धति में सृजनात्मकता (Creativity) एवं नवाचार (Innovation) की काफी संभावनायें रहती हैं। इस पद्धति में समस्त लाभार्थी तथ्यों के संकलन में भाग लेते हैं। अतः तथ्यों का सत्यापन आसानी से हो जाता है। सहभागी विकास के लिए स्थानीय स्तर पर ग्रामीणों की सहायता से उन्हीं की भाषा एवं प्रतीकों के आधार पर आंकड़े संग्रह करने, समस्याओं की पहचान करने, उनकी प्राथमिकताओं का निर्धारण एवं समाधान करने की यह प्रक्रिया है। इसके अतिरिक्त यह मनोवृत्ति परिवर्तन करने की भी प्रक्रिया है, जिसमें सहभागिता के माध्यम से समुदाय को सशक्त एवं स्वावलम्बी बनाया जाता है।

इस प्रकार सहभागी ग्रामीण क्षेत्रों के समग्र विकास के लिए राजशाही या नौकरशाही तौर तरीकों को छोड़कर जनतांत्रिक विधि के माध्यम से समस्याओं के समाधान की पद्धति के रूप में उभरकर आयी है। महात्मा गाँधी के ग्राम स्वराज का स्वप्न भी यही था कि ग्रामों के निवासी विकास की प्रक्रिया में अपने भाग्य का फैसला स्वयं करें। संविधान के 73वें संशोधन अधिनियम 1992 के तारतम्य में अब शासन के विभागों द्वारा ग्राम विकास की योजना बनाने तथा उन्हें क्रियान्वित करने में ग्रामीणों की सीधी भागीदारी का प्रावधान किया गया है। इस प्रकार सहभागी ग्रामीण समीक्षा पद्धति अधिक प्रासंगिक एवं उपयोगी हो गयी है।

पी.आर.ए. के प्रकार

कार्यों एवं उद्देश्यों के अनुरूप सहभागी ग्रामीण समीक्षा पद्धति के कई प्रकार हैं–

1. गवेषणात्मक (खोजपूर्ण) Exploratory PRA	नाम के अनुरूप इसका उपयोग कुछ नया खोजने में एवं कुछ नयी जानकारी प्राप्त करने के लिये करते हैं।
2. प्रासंगिक (सामयिक) Topical PRA	किसी विशेष मुद्दों पर।

3.	निगमनात्मक Deductive PRA	अनुमान आधारित, विशेषकर संवेदनशील विषयों पर जानकारी हेतु।
4.	अधिगम की प्रक्रिया / सीखने की प्रक्रिया PRA for Research & Training	शोध एवं प्रशिक्षण हेतु।
5.	नियोजन PRA for Panning & Impl- ementation	नियोजन एवं क्रियान्वयन हेतु।
6.	मूल्यांकनात्मक PRA for Monitoring & Evaluation	अनुश्रवण एवं मूल्यांकन हेतु।

ग्रामीण सहभागी समीक्षा (पी.आर.ए.) की पद्धतियाँ

सहभागी ग्रामीण समीक्षा (PRA) के लिए अनेक पद्धतियाँ प्रयोग में लायी जाती हैं। इन पद्धतियों का प्रयोग आवश्यकता एवं कार्य के स्वरूप के आधार पर किया जाता है। कभी-कभी एक ही पद्धति से जानकारी प्राप्त हो जाती है तथा कभी-कभी कई विधियों का एक साथ प्रयोग करना पड़ता है। सहभागी ग्रामीण समीक्षा के अन्तर्गत निम्नांकित दो कार्य करने पड़ते हैं–

1. प्राथमिक एवं द्वितीय तथ्यों का पुनरीक्षण,
2. प्रत्यक्ष अवलोकन।

(1) प्राथमिक एवं द्वितीय तथ्यों का पुनरीक्षण
(Primary and Secondary Data Review)

ग्रामीण सहभागी समीक्षा की प्रत्यक्ष अवलोकन विधियों के पूर्व लाभार्थियों के संबंध में पूर्व में संकलित द्वितीयक तथ्यों का सर्वप्रथम पुनरीक्षण करते हैं। तत्पश्चात् प्राथमिक तथ्यों को भी संकलित करने का प्रयास किया जाता है। प्राथमिक एवं द्वितीयक तथ्यों के पुनरीक्षण से प्रत्यक्ष अवलोकन पद्धतियों का प्रयोग सुगमता पूर्वक किया जाता है।

(2) प्रत्यक्ष अवलोकन (Direct Observation)

प्रत्यक्ष अवलोकन पद्धति के लिए निम्नांकित पद्धतियों में से किसी भी पद्धति को अकेले या अन्य विधियों के साथ प्रयोग करते हुए सहभागी ग्रामीण समीक्षा की जा सकती है–

1. सामूहिक बैठक एवं साक्षात्कार (Semi-Structure Interview)
2. स्वयं करके जानना (Do it Yourself)
3. ग्रामीणों के सहयोग से नक्शा या मॉडल बनाना (Maps & Models)
4. ग्रामीणों के साथ क्षेत्र का अनुप्रस्थ भ्रमण (Transect Walk)
5. समय रेखा (Histrocial Profile)
6. समय चित्रण (Time Trend)
7. मौसमी कलेन्डर (Seasonal Diagram)
8. खाद्य पदार्थ चित्रण (Food Calender)
9. वरीयता निर्धारण एवं सारणी क्रमबद्धता (Ranking & Scoring)
10. सम्पत्ति आधारित वरीयता (Wealth Ranking)
11 चपाती चित्रण (Institutional Mapping)
12. प्रक्रिया या गतिशीलता चित्रण (Mobility Mapping)
13. दैनन्दिनी कार्य (Daily Routine)
14. व्यय का स्वरूप (Expenditure Pattern)
15. भूमि के उपयोग का स्वरूप (Land use Pattern)
16. स्वाट विश्लेषण (SWOT - Analysis, Strength, Weakness, Oppor tunity &Threats)

(1) सामूहिक बैठक एवं साक्षात्कार

सहभागी ग्रामीण समीक्षा का सबसे सीधा और आसान तरीका ग्रामीणों के साथ सामूहिक बैठक आयोजित कर चर्चा करना है। ग्राम में आयोजित सामूहिक बैठकों के माध्यम से ग्राम की मूलभूत जानकारी, समस्याओं और आवश्यकताओं को शीघ्रता से और ठीक से समझा जा सकता है। सहभागी ग्रामीण समीक्षा के दौरान आयोजित की गई बैठक में एक साथ बड़े समूह या फिर किसी उद्देश्य विशेष अथवा समस्या विशेष के बारे में 8–10 लोगों के समूह के साथ चर्चा की जा सकती है। ऐसे बैठकों में एकतरफा संवाद की बजाय सभी लोगों को खुली चर्चा के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। ग्राम के छोटे-छोटे विशेष समूहों जैसे– बच्चों, किशोरी, बालिकाएं, धात्री एवं गर्भवती महिलाऐं, वृद्ध महिला, सरपंच महिलाओं, जन-प्रतिनिधियों

आदि के साथ अलग से बैठक आयोजित करना भी काफी लाभप्रद रहता है। क्योंकि इनकी अभिरुचियां, समस्या व आवश्यकताएं आपस में एक–सी और दूसरे समूह से भिन्न होती हैं। विकास के बारे में इन छोटे समूहों की अवधारणा भी बहुधा दूसरे तथा पूरे ग्राम की आम धारणा से थोड़ा हटकर हुआ करती हैं। अतः ऐसे छोटे समूहों की बैठकों से प्राप्त जानकारी को बड़े समूह की बैठकों में प्रस्तुत कर उन लोगों की आवाज को बल दिया जा सकता है, जो बड़े समूह की बैठकों में बोलने में संकोच करते हैं।

सामूहिक बैठकों को उद्देश्य परक बनाये रखने के लिए बैठक आयोजित और संचालित करने वाले को पहले ही चर्चा के मुद्दों की एक सूची बना लेनी चाहिए और यथा संभव चर्चा को उन मूल बिन्दुओं के इर्द-गिर्द ही रखने का प्रयास करना चाहिए। परन्तु यह भी ध्यान रखें की किसी ग्रामीण को बोलते समय बीच में अनावश्यक और अचानक न टोकें, बल्कि अधिक बोलने वाले को सुझाया जाना चाहिए कि वे दूसरों को भी बोलने का अवसर दें। सामूहिक बैठकों की भांति ही एक या दो व्यक्तियों के साथ एक समय में विस्तृत चर्चा और साक्षात्कार के माध्यम से भी जानकारी एकत्रित की जा सकती है।

उद्देश्य

बैठकों का उद्देश्य जानकारी का आदान-प्रदान करने का होता है। इनसे ग्राम के लिए महत्वपूर्ण मुद्दों पर विचार विमर्श करने का अवसर मिलता है और आम सहमति से विकास संबंधी निर्णय लिये जा सकते हैं।

समूह चर्चा का संचालन

समूह चर्चा भी सीखने और सिखाने की एक पद्धति है। इसमें कार्य और प्रक्रिया दोनों ही हैं। इसका संचालन करना थोड़ा कठिन है। ये दिखता बड़ा आसान है, क्योंकि हम हमेशा देखते हैं कि कुछ लोग आपस में चर्चा करते हैं। क्लास रूम में समूह चर्चा यूं ही गपशप के लिए नहीं होती है। एक पूरी क्रिया को इस प्रकार संचालित करना है, ताकि उसका उत्पाद या नतीजा सीखाने के वातावरण में एक मुख्य कड़ी रहे। समूह चर्चा का संचालन करने की योग्यता प्रशिक्षक को अपने में विकसित करना है।

पंचायतों में समूह चर्चा का महत्व अधिक है। पंचायतों की बैठकों में औपचारिक रूप से निर्णय लिये जावेंगे किन्तु उन्हें दिशा अनौपचारिक समूह जोकि अवश्य ही पंचायतों या क्षेत्रों में रहेंगे, वे ही देगें।

यहाँ विषय क्लास रूम में समूह चर्चा के संचालन तक ही सीमित है। समूह में सदस्य आपस में जिसके संबंध में बातें करते हैं तब वह चर्चा कार्य

से संबंधित होती है और जब संवाद इस प्रकार चल रहा हो कि सबकी सहभागिता होने लगे तब वहाँ प्रक्रिया पर ध्यान होगा। कार्य और प्रक्रिया दोनों पर ध्यान आवश्यक है। इनमें तालमेल से ही सही नतीजे पर पहुँचा जा सकता है। इसका कुशल संचालन ही सीखाने का माहौल बनाता है और प्रभावी नतीजे सामने आते हैं।

समूह चर्चा क्यों ?

समूह चर्चा या तो निर्णय के लिए या फिर सूचना के आदान-प्रदान के लिए रखी जाती है, या फिर चर्चा में दोनों ही अवयव रहते हैं। तथ्य संकलनकर्ता एवं समूह जानकारी एक दूसरे को देते हैं, जो कि निर्णय लेने में मदद देती है, समस्या को सुलझाने के लिये भी समूह का सहारा लिया जाता है। एक से अधिक व्यक्ति जब एक साथ किसी उद्देश्य से चर्चा के लिए जुड़ते हैं तब निश्चित ही समाधान उन सब के लिए मान्य व स्वीकार होता है तथा प्रत्येक की प्रतिबद्धता रहती है।

समूह का आकार

सदस्य सामान्यतः छः या सात से अधिक न रहें। पांच से सात तक की संख्या उचित है। यदि संख्या इससे अधिक होती है तब संवाद का संतुलन बिगड़ जाता है। समूह उपसमूह में बंट जाता है और शक्ति का प्रदर्शन आरंभ हो जाता है। जिस आशय के लिए समूह बनाया गया उस पर से ध्यान हट जाता है।

सदस्यों का चयन

एक जैसे शैक्षणिक योग्यता या एक प्रकार के धंधे में लगे सभी सदस्य एक समूह में न रहें। एक या दो महिला सदस्य अवश्य ही रहें।

समूह का नेतृत्व

आरंभ के चक्र में तथ्य संकलनकर्ता ही समूह का नेतृत्व संभाल सकता हैं। मगर दूसरे तीसरे चक्र में नेतृत्व समूह के सदस्य का ही होना चाहिये।

चर्चा के लिए टापिक/वक्तव्य/या प्रश्न–

- कार्य विशेष से संबंधी ।
- दिलचस्प हो।
- चुनौतीपूर्ण रहे।

- योग्यता अनुसार हो।
- सटीक हो।
- स्पष्ट रहे।
- एक ही विषय से संबंधित रहें।
- निर्धारित समय सीमा में पूरा हो सके।

संवाद का प्रतिरूप

- लीडर केन्द्रित न रहे।
- दो-दो के समूह में ही सीमित न रहे।
- अनौपचारिकता का वातावरण रहे।
- विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता रहे।
- अपने विचार स्वयं प्रस्तुत करे।
- एक सदस्य का विचार उनके पड़ोसी को, उसे स्पष्ट करने या समझाने का अवसर न दिया जावे।
- सब सदस्य बराबरी से अपने विचार दें।

तथ्य संग्रहकर्ता / लीडर के लिए विशेष बिन्दु

- चर्चा के लिए योजना बनाना / चर्चा आरंभ करना।
- चर्चा की गति बनाये रखना।
- चर्चा को गति देना।
- चर्चा की दिशा आशय की ओर रखना।
- समझौता कराना जहां कुछ रूकावट आ जावे।
- अर्थ स्पष्ट करना।
- संक्षेपीकरण व विश्लेषण करना।
- जानकारी देना या चाहना।
- मत मांगना / प्रोत्साहन।
- सहमति की ओर ले जाना।
- वातावरण सही रखना।

प्रस्तुती के समय विशेष ध्यान देने योग्य मुद्दे

- समूह कार्य को प्रस्तुत करना: लीडर द्वारा प्रस्तुतीकरण का मुख्य आशय यह है कि क्या समूह कार्य पद्धति से उद्देश्य प्राप्त हुये।

- ✦ जिस कार्य में समूह जुड़ा है उसमें सदस्यों की प्रतिबद्धता दिख रही है। यह उनके व्यवहार से प्रदर्शित होगी।
- ✦ क्या समूह के सदस्य प्रस्तुतीकरण के समय रुचि ले रहे हैं।

सफल साक्षात्कार की आवश्यक बातें

- ✦ साक्षात्कार में दो से अधिक व्यक्ति जुड़े हों।
- ✦ साक्षात्कार की शुरूआत परंपरागत अभिनंदन से करें और बतायें कि यह टोली यहाँ कुछ सिखने व जानने के उद्देश्य से आयी है।
- ✦ बातचीत या प्रश्न की शुरूआत स्थानीय समस्या पर उनकी विचार जानने के लिए करें।

लाभ

सामूहिक बैठकों के माध्यम से काफी अधिक लोगों से संपर्क किया जा सकता है। समूह का विश्वास जीतने, समस्या व उनके संभावित हल की पहचान करने और योजनाओं की रूप-रेखा बनाने में सामूहिक बैठकें महत्वपूर्ण सिद्ध होती हैं। सामूहिक बैठकों में चर्चा उपरान्त लिए गये निर्णय पर बाद में विवाद होने की संभावना काफी कम रहती है।

करें ?

- ✦ सहभागी ग्रामीण समीक्षा के उद्देश्यों , प्रक्रिया को समझ लें।
- ✦ चर्चा हेतु समूह का निर्माण करें।
- ✦ समूह के सदस्य / नेता का चुनाव करें।
- ✦ भूमिका एवं कार्य निर्धारित करें।
- ✦ साक्षात्कार के विषय एवं चिन्ह स्पष्ट कर लें।
- ✦ सीखने वाले की भूमिका अपना लें।
- ✦ सीखने में रुचि दर्शायें एवं ग्रामीणों को सम्मान दें।
- ✦ ग्रामीणों के भावानाओं को समझें, जैसे क्रोध, आलस्य, दुःख, उत्तेजना आदि।
- ✦ ग्रामीणों की बातें ध्यान देकर सुनें एवं आँखों से भी सुनने का प्रयास करें।
- ✦ संकेत का उपयोग करें। तथ्य, श्रुति एवं विचार में अंतर करें।

- निर्धारित समय पर जायें।
- उन्हीं की भाषा में संक्षिप्त एवं स्पष्ट वाक्यों का प्रयोग करें।
- सभी से एक समान व्यवहार करें।
- किसी भी सूचना के त्रिकोनात्मक जाँच करें।
- ग्रामीणों को अधिक से अधिक बोलने का मौका दें।

न करें

- परंपरागत पद्धति का प्रयोग न करें।
- बिना पूर्व तैयारी के साक्षात्कार न करें।
- साक्षात्कार के विषयों को कम महत्वपूर्ण न समझें।
- स्वयं को ग्रामीणों से श्रेष्ठ न समझें।
- चर्चा के दौरान किसी की निंदा न करें।
- ग्रामीणों से राय पूछने या शंका समाधान करने से न हिचकिचायें।
- ग्रामीणों की बातें बीच में न रोकें।
- समूह के सदस्यों में किसी को कम महत्वपूर्ण न समझें।
- सिर्फ एक व्यक्ति से प्राप्त जानकारी को सही न मानें।
- ग्रामीणों से चर्चा के दौरान आपस में बातें न करें।
- ग्रामवासी अगर सम्मानपूर्वक कुछ दें तो यथा संभव ग्रहण कर लें।
- सदस्यों का समय बर्बाद न करें।
- विस्तृत एवं कठिन वाक्यों का प्रयोग न करें।
- भेदभाव की स्थिति उत्पन्न नहीं होने दें।
- तुरन्त निष्कर्ष पर नहीं पहुँचें।
- एक की राय, सबकी की राय नहीं मानें।
- सिर्फ काम पर ही भरोसा नहीं करें।
- कम बोलें।

सावधानियाँ :

सामूहिक बैठकों का समय ऐसा रखना चाहिये ताकि अधिक से अधिक लोग इसमें सम्मिलित हो सकें साथ ही अधिकाधिक लोगों को बैठक के

उद्देश्य व समय की जानकारी एक दो दिन पूर्व ही दें दी जानी चाहिये। विशेषकर महिलाओं, भूमिहीनों, किशोरी बालिकाओं आदि को पूर्व सूचना दिया जाना, बैठक को सफल बनाता है। सामूहिक बैंठकों में किन्ही प्रभावशाली तवकों के निहित स्वार्थ की पूर्ति हेतु छिपे हुए मुद्दों की पूर्ति नहीं होने देना चाहिये।

(2) स्वयं करके जानना

इस विधि के अंतर्गत ग्रामीणों के साथ उनके कार्यों को उनके साथ करके जानने का प्रयास किया जाता है। उदाहरण के लिए ग्रामीणों के साथ एक मद्दगार के रूप में खेतों में साथ–साथ हल चलाते हुए अथवा औरतों के साथ जलाऊँ लकड़ी या चारा एकत्रित करते हुए हाथ बटाया जाता है। इस विधि के माध्यम से उनकी व्यवहारिक कठिनाईयों को समझने में सहायता प्राप्त होती है।

(3) ग्रामीणों के सहयोग से नक्शा या मॉडल बनाना

इस विधि में ग्रामीणों द्वारा स्थानीय सामग्रियों जैसे गोबर, मिट्टी, खड़िया, चूना, गेहूँ, भूसा, रेत, कोयला की मदद से जमीन या फर्श पर गाँव का नक्शा बनाया जाता है। इस नक्शे की मदद से गाँव के महत्वपूर्ण विवरण यथा मंदिर, मकान, खेत, चारागाह, जंगल, जल स्त्रोत इत्यादि की जानकारी प्राप्त होती है। यह नक्शा किसी खुले, समतल स्थान पर, ग्रामीणों से बनवाने का प्रयास किया जाना चाहिये। बाद में इसे कागज पर उतार लेना चाहिये।

उद्देश्य

गाँव के प्राकृतिक एवं मानव निर्मित संसाधनों के वास्तविक स्थिति का वर्तमान व अद्यतन स्वरूप प्रकट होता है।

गाँव के लोगों के दृष्टिकोण से गाँव की सामाजिक एवं भौतिक स्थिति का चित्रण करने से विभिन्न संसाधनों से लाभ होने वाले समूहों की पहचान करने में मदद मिलती है।

इस पद्धति से नक्शे को बनवाने में अधिक से अधिक लोगों को जुटाया जाना चाहिये और नक्शे बनाने के पूर्व उसके उद्देश्य के बारे में उन्हें बताया जाना चाहिये। नक्शे बनाने का शुरूआत उसी स्थान को केन्द्र बिन्दु मानकर की जानी चाहिये जहाँ बैठकर नक्शा बनाया जा रहा हो। नक्शा बनाते समय एक या दो ग्रामीणों की बात को आधार न मानकर अधिक से अधिक लोगों

को उसमें जोड़ना चाहिए। नक्शा बनाने के दौरान और पूरा होने के बाद ग्रामीणों को इसकी पुनः जाँच का अवसर देकर गलतियाँ पहचानने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिये ताकि नक्शे पर विवरण सही-सही अंकित हो सके। गाँव में कराये जा सकने वाले विभिन्न कार्यों के लिए उपयुक्त स्थानों को नक्शे में अंकित करने का काम लोगों के सहयोग से ही करना चाहिये। इस प्रकार विकास कार्य के लिए उपयुक्त स्थल की पहचान की जा सकती है।

ग्रामीणों की सहभागिता से निम्न प्रकार के मानचित्र बनाये जा सकते हैं–

- भौगोलिक विशेषता मानचित्रण,
- सामाजिक मानचित्रण,
- जल ग्रहण क्षेत्र मानचित्रण,
- वर्तमान भूमि उपयोग मानचित्रण,
- सेवा उपलब्धता मानचित्रण।

भौगोलिक विशेषता मानचित्रण

इसके अंतर्गत भू-आकृति अर्थात् मैदानपहाड़ी, घाटी आदि का विवरण, मिट्टी के प्रकार तथा पर्यावरणीय जैसे प्रदूषण, मौसमी बाढ़, भूमि कटाव या पानी के खारेपन जैसे विवरण दिखाये जा सकते हैं। यह मानचित्रण ग्राम विकास या वानिकी संबंधी कोई भी योजना बनाने में अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध होता है।

सामाजिक मानचित्रण

इससे गाँव और उसके आसपास के मानचित्रण को रंगोली या चौक से अलग-अलग रंगों से जमीन या सीमेंट फर्श पर बनाया जाता है। इस अभ्यास में मुख्य चीजें, जैसे रहने का घर, मंदिर, गोदाम, स्कूल, टोला / ढ़ाना / फलिया, विभिन्न जातियाँ एवं सामजिक वर्ग इत्यादि दिखाये जाते हैं। अलग-अलग रंगों के विभिन्न प्रकार की बीजों से कम या अधिक संख्या को पशु, मानव जनसंख्या, शिक्षा और स्वास्थ्य स्तर, स्कूल जाने वाले बच्चों आदि की स्थिति दर्शायी जा सकती है। उदाहरण के लिये पशु के प्रजनन के लिए, इमली के बीज, शरीफा के बीज, नवजात बालकों के लिए अरण्डी बीज, नवजात बालिकाओं के लिए मक्के के बीज, गर्भवती माताओं के लिए काले चने,

धात्री माताओं संख्या, प्रत्येक घर में दर्शाने के लिए प्रयोग में लाये जा सकते हैं। इसे ग्रामीणों द्वारा कागज पर भी बनाया जा सकता है।

लाभ

सामाजिक, मानचित्रण से विभिन्न जातियों, स्वास्थ्य, शिक्षा, स्त्री-पुरुष अनुपात, बच्चों की संख्या, विवाह की आयु, लड़कियों में संतान उत्पत्ति की आयु, सामाजिक एवं आर्थिक स्तर, पशुधन एवं कृषि भूमि स्वामित्य का पता लगाने में किया जाता है। मानचित्रण द्वारा विभिन्न विकास कार्यक्रमों के अंतर्गत चयनित परिवारों की पहचान व भविष्य में उन परिवारों को किस प्रकार रोजगार मूलक गतिविधियों के लिए चुना जा सकता है या लाभ लिए जा सकते हैं, का भी पता लगाया जा सकता है। इससे समाज के बदलते परिवेश ; जैसे स्वास्थ्य, आबादी, शिक्षा, रोजगार इत्यादि की जानकारी मिलती है।

संसाधन मानचित्रण

यह तरीका उस क्षेत्र के संसाधन ; जैसे कि गाँव, वन्य, जल, अन्य अधोसंरचना इत्यादि की स्थिति आदि के बारे में बताता है। इससे हमें संसाधनों की स्थिति और सीमाओं की स्थापना करने, विश्लेषण करने और बेहतर समय विकसित करने में सहायता मिलती है। सामाजिक मानचित्रण की तरह ही इसमें भी रंगोली पाउडर, चाक या मार्कर पेन से कागज, जमीन या फर्श पर बनाया जा सकता है।

लाभ

शुष्क भूमि, सिंचित भूमि, चारागाह, वन भूमि, राजस्व व मंदिर की भूमि, तालाब और अन्य जल स्त्रोत इत्यादि को दिखाया जा सकता है। संसाधन मानचित्र से उपचार योजनायें, भृदा व जल संरक्षण, वानिकी एवं अन्य विकास के वास्वविकता मूलक योजना बनाने में अत्यधिक सहायता मिलती है। इसके माध्यम से गाँव के प्रत्येक घर/इकाई से संबंधित आबादी, परिवार नियोजन कार्यक्रम में भागीदारी, शिक्षा स्तर, पशुधन, वनों पर उनकी निर्भरता, लघु वनोपज, भूमि के प्रकार, फसलों इत्यादि के बारे में विस्तृत जानकारी मिलती है।

जलग्रहण क्षेत्र का मानचित्रण

जलग्रहण क्षेत्र के मानचित्रण में प्रमुख नदी, नालों तथा उनके सहायक बारहमासी तथा बरसाती नालों को भी दर्शाया जाता है। इस मानचित्र में नदी, नालों व पहाड़ियों का अपरदन वाला भाग दर्शाकर उनकी उपयोगिता बढ़ायी

जा सकती है। इसका परीक्षण मौके पर जाकर भी किया जाना चाहिये।

वर्तमान भूमि उपयोग मानचित्रण

इस मानचित्रण में कृषि क्षेत्र में विभिन्न फसलों का विवरण दिखाने के अलावा भूमि उपयोग के अन्य तरीके ; जैसे बागवानी, वानिकी, वृक्षारोपण, बिगड़े वन, चारागाह, परत भूमि, खदान आदि दर्शाये जाते हैं। अन्य प्रकार के भूमि उपयोग हेतु उपयुक्त क्षेत्र को भी इस मानचित्रण पर दर्शाकर इसकी उपयोगिता में वृद्धि की जा सकती है।

मानचित्रण के प्रकार

- जमीन पर मानचित्रण,
- कागज पर मानचित्रण,
- दीवार या बोर्ड पर मानचित्रण,
- रूपान्तरण,
- भौगोलिक सूचना प्रणाली।

जमीन पर मानचित्रण

जमीन पर सीधे मानचित्रण बनाना काफी आसान होता है। समतल जमीन हो तो अधिक अच्छा है। लकड़ी या बुरादे, रंगीन चाक या रंगीन रंगोली पाउडर के विभिन्न रंगों से अलग-अलग रंग, अलग-अलग विशेषताओं अथवा आकृतियों के लिए चयनित किया जा सकता है। गाँव का खाका बनाते हुए उसमें घरों की व्यवस्था, गलियाँ, आबादी, पशुधन, कुपोषित बच्चों वाले परिवार, गर्भवती एवं धात्री माताओं वाले परिवार, नाला, नदी, टैंक, पहाड़ियों, सिंचित भूमि, बंजर भूमि, समीप का क्षेत्र, चारागाह, इत्यादि दिखलाये जा सकते हैं। इस प्रकार के मानचित्रण के निम्नांकित लाभ हैं–

- इसे एक साथ कई लोग देख सकते हैं।
- यह आसान एवं जल्दी सूचना प्राप्त करने का तरीका है।
- गलती को तत्काल सुधारा जा सकता है।
- इसको आगे भी विकसित किया जा सकता है।
- यह ग्रामीणों की अभिव्यक्ति प्रदर्शन का सुगम एवं सस्ता तरीका है।
- गाँव की महिलाऐं रंगोली चित्रण में रुचि लेती हैं। उनकी जानकारी का लाभ मिल जाता है।

- ✦ इससे व्यापक विचार-विमर्श की बेहतर संभावना पैदा होती है।
- ✦ जमीन में कहीं तक भी मानचित्रण को फैलाव दिया जा सकता है।
- ✦ इसकी कमी यह है कि यह स्थायी नहीं होता।

कागज पर मानचित्रण

कार्ड शीट अथवा कागज पर रंगीन पेन अथवा पेंसिलों/रंगों की सहायता से किसी ग्रामीण द्वारा बनाया जाता है। शेष लोग सहायता और सलाह देते हैं जिसके आधार पर आवश्यक सुधार करते हुये इसे अंतिम रूप देते हैं।

दीवार या बोर्ड पर मानचित्रण

यह कागज और जमीन पर मानचित्रण का मिला-जुला रूप है। इसमें गेरू, रंगीन चाक, खड़िया, कोयला, इत्यादि का उपयोग विभिन्न भौतिक अभौतिक पदार्थों का प्रयोग अभिव्यक्तियों के लिये किया जाता है।

रूपांतरण

जमीन, दीवार या बोर्ड पर बनाये गये मानचित्रण को सुरक्षित रख सकने लायक बनाकर कागज, कपड़े या गत्ते के शीट पर उतार लेने को रूपांतरण कहते हैं। जमीन, कागज, दीवार या बोर्ड पर बनाये गये मानचित्र को जब हम अथवा ग्रामीण रूपांतरण करते हैं तो विभिन्न आकारों के अनुपात को ध्यान में रखना चाहिये। मानचित्र बनाते समय समस्याओं के हल पर भी चर्चा की जानी चाहिये।

भौगोलिक सूचना प्रणाली

यह अति आधुनिक तकनीक है जिसके माध्यम से कम्प्यूटर का उपयोग करते हुये विभिन्न प्रकार के मानचित्रों को एक दूसरे के ऊपर रखते हुये किसी क्षेत्र विशेष की अलग–अलग विशेषताओं को एक साथ समझा जा सकता है। सहभागी ग्रमीण समीक्षा के संदर्भ में इस प्रणाली को सरलीकृत करके हस्त निर्मित नक्शों को पारदर्शी कागज पर या प्लास्टिक फिल्म पर बनाकर गाँव की विभिन्न जानकारियों को एक साथ समझा जा सकता है। इस विधि से अलग–अलग मानचित्रों की जानकारी का समन्वित उपयोग कर संसाधनों की उपलब्धता व उपयोग की बेहतर समझ पैदा होती है।

जन सहयोग से नक्शा बनाने में सावधानियाँ

- ✦ नक्शा, खुले स्थान पर बनाया जाना चाहिये जहाँ अधिक से अधिक लोग एकत्र हो सकें।

- ✦ नक्शा बनाने में मात्र एक या दो व्यक्तियों के विचारों को महत्व देने के बजाये अधिक से अधिक लोगों को जोड़ना चाहिये।
- ✦ महिलाओं और भूमिहीन निर्धनों को अपना मत व्यक्त करने का अवसर अवश्य देना चाहिये।
- ✦ विकास कार्य संबंधी जो स्थल बनाये जा रहे हों उसके बारे में गाँव में सबको बताकर उस पर खुली चर्चा का माहौल बनाना चाहिये और यदि लोग पूर्व में बताये गये तथ्यों में कुछ परिवर्तन करना चाहें तो उसे नक्शें में अंकित करना चाहिये।

(4) ग्रामीणों के साथ क्षेत्र का अनुप्रस्थ भ्रमण

जिस गाँव की सहभागी ग्रामीण समीक्षा की जाती है, उस गाँव की अधिकतर सूचनायें या जानकारी देने वाले व्यक्ति के साथ गाँव तथा उसके आस-पास के क्षेत्र का भ्रमण किया जाता है। भ्रमण के समय क्षेत्र का ध्यान से निरीक्षण करते हुये, पूछ-ताछ की जाती है, ग्रामवासियों के विचार सुने जाते हैं और उनसे विचार विमर्श कर स्थानीय तकनीकीयों के बारे में जानकारी प्राप्त की जाती है। क्षेत्र भ्रमण के दौरान संसाधन मानचित्र में ग्रामवासियों द्वारा दी गयी सूचनाओं की जांच भी कर ली जाती है।

क्षेत्र के भ्रमण करने वाली टोली में अध्ययनकर्ता के साथ लगभग 5–8 ग्रामीण होने चाहिये जिनके पास कृषि कार्य के लिये विभिन्न संसाधन हों, वे उनका प्रयोग करते हों, उनसे संबंधित वस्तुओं की जानकारी भी रखते हों। यदि कोई भ्रमणकारी टोली जंगल के इलाके में अध्ययन के लिये जाती हो, तो उनमें महिलाओं व भूमिहीनों को अवश्य शामिल किया जाना चाहिये, क्योंकि अधिकांशतः ऐसे लोगों को प्रोत्साहित करना चाहिये कि वे अपनी भूमि व समस्याओं के बारे में खुलकर जानकारी दें तथा बतायें कि वे उन्हें किस प्रकार प्रभावित करती हैं। हमें यह समझ लेना चाहिये कि यह पी.आर.ए. पद्धति द्वारा ग्रामीणों के साथ क्षेत्र की विशेषताओं को समझने तथा विवरण एकत्रित करने की दृष्टि से की जाने वाली यात्रा है।

अनुप्रस्थ भ्रमण का उद्देश्य

भू-आकृति, भूमि के ढाल, भूविज्ञान, मिट्टी की किस्में तथा उनके गहाराई, वनस्पति औषधि के पौधे, प्राकृतिक फल, बीज, प्राकृतिक रूप से उपलब्ध अन्न, पौष्टिक आहार, जंगल, चारागाह, पड़त भूमि, भूमि कटाव, एवं अन्य संबंधित विवरण, भूमि क्षमता, कृषि वनस्पतियों तथा फसल आदि के बारे

में ग्रामीणों से चर्चा में प्राप्त जानकारियों का प्रत्यक्ष अवलोकन व सत्यापन होता है।

उपरोक्त जानकारी एकत्रित करने के लिए क्षेत्र के सबसे ऊँचे स्थान से यात्रा करनी चाहिये, ताकि यथा संभव सभी क्षेत्रों खेती इत्यादि को देखा तथा समझा जा सके। सहभागी समीक्षा कर रहे दल में सम्मिलित सदस्यों को चाहिये कि भ्रमण के दौरान देखते हुये तथा चर्चा से ज्ञात हुये सभी विवरणों को नोट बुक पर अंकित करते चलें। इस यात्रा के दौरान ग्रामीणों से हुई चर्चा में बनाये गये मानचित्रों को भी साथ रखना चाहिये तथा उनमें दर्शाये तथ्यों का मिलान मौके की स्थिति से किया जाना चाहिये, यात्रा के दौरान भ्रमण पर देखी गई विवरणों को चित्रों के माध्यम से कागज पर दर्शाते चलें तथा उसका सत्यापन अन्य स्त्रोतों से बाद में अवश्य करें।

इस प्रक्रिया में निम्न चरणों का होना आवश्यक है–

- संसाधनों के भौतिक गुणों का निरीक्षण करना ; जैसे मिट्टी का बह जाना, जलभराव, मिट्टी की गहराई, मिट्टी के प्रकार, लवणीयता आदि।
- विभिन्न संसाधनों से होकर गुजरना ; जैसे आम जमीनें, निजी भूमि, जंगल की भूमि, नाले, स्थानीय जमीन का उपयोग एवं मिट्टी के प्रकार।
- फसलों एवं अन्य जैविक वस्तुओं का निरीक्षण करना। ग्रामवासियों को जिन मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है, को जानने का सबसे सरल तरीका है कि लोगों को प्रोत्साहित किया जावे कि वे ग्राम की सामुदायिक या व्यक्तिगत समस्याओं को मौके पर ही दिखायें।
- क्षेत्रीय भ्रमण के दौरान सभी प्राकृतिक संसाधनों, स्थानीय भूमि के उपयोग का वर्गीकरण, संसाधनों की स्थिति, इन संसाधनों के विकास में रुकावट व परेशानियां, स्थानीय लोगों द्वारा प्रयुक्त समाधान की पहचान करनी चाहिये। अनुप्रस्थ काट में भ्रमण के दौरान भ्रमणकारी दल को काफी कुछ सीखने को मिल सकता है।

लाभ

विभिन्न क्षेत्रों का क्षेत्रीयकरण, भू–प्रबंधन, मानचित्रण, उत्पादकता मानचित्रण, देशी कला कौशल की स्थिति का पता लगाने में यह उपयोगी है।

गाँव में यह पता लगाने के लिये कि किस क्षेत्र में विकास/उपचार की आवश्यकता है, के लिये भी परिभ्रमण आवश्यक है। पी. आर. ए. की तकनीकों से प्राप्त जानकारी की पुष्टि इसके द्वारा हो जाती है।

- ✦ अनुप्रस्थ भ्रमण प्रारंभ करने के पूर्व गांव के सबसे ऊँचे स्थान पर जाकर चारों दिशाओं का अवलोकन कर ग्रामीणों से परामर्श करते हुये ऐसे भ्रमण पथ का निर्धारण करना चाहिये जिसमें अधिक से अधिक चीजों को देखा जा सके।
- ✦ भ्रमण के दौरान कुछ ग्रामीणों को साथ में अवश्य रखें जिन्हें क्षेत्र की जानकारी हो।
- ✦ आवश्यकतानुसार दो या तीन दिशाओं में अवश्य यात्रा करनी चाहिये और भ्रमण पथ ऐसा चुनना चाहिये जिसमें गांव का अनुप्रस्थ काट प्रदर्शित होता हो।

(5) समय रेखा

समय रेखा गांव में घटित हो चुकी विभिन्न घटनाओं को काल क्रम में जानने की विधि है। विशेषकर गांव में प्रारंभिक अवस्था की चर्चाओं में समय रेखा संबंधी चर्चा से गांव की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर काफी प्रकाश पड़ सकता है। समय रेखा के बारे में अक्सर ग्रामीणों को घटनाओं की ठीक स्थिति बताने में कठिनाई होती है। अतः जहाँ जरूरत हो वहाँ घटनाओं को अन्य बड़ी राजनीतिक, धार्मिक व सामाजिक घटनाओं जैसे आजादी, अकाल या महामारी अथवा किन्ही लोकप्रिय नेता अथवा अधिकारी के कार्यालय से जोड़कर जानकारी प्राप्त हो सकती है। उदाहरणार्थ एक ग्राम की समय रेखा दी गई है–

- 1920 गाँव के दो नौजवान आजादी की लड़ाई में जेल गये।
- 1942 गांव में एक अंगरेज रेंजर आया था।
- 1946 गांव के पास के जंगल में कुछ निकला।
- 1980 जंगल में बड़े पैमाने पर आग लगी।
- 1992 पहली वार उन्नत किस्म का गेहूँ बोया गया।
- 1994 गांव में सिंचित कृषि 10 परिवारों द्वारा।
- 1998 गांव में फसलों में इल्ली का प्रकोप।
- 1999 बाढ़ से 38 किसानों की फसल नष्ट।

(6) समय कलैण्डर

समय चित्रण के द्वारा महत्वपूर्ण विषयों के संबंध में समय-समय पर आये परिवर्तनों को चित्रों के माध्यम से समझा जाता है। खासतौर पर अशिक्षित ग्रामीण समूहों के साथ चर्चा करने से यह पद्धति अधिक कारगर साबित होती है। उदाहरण के लिये वनों की दशा, वर्षा की मात्रा, कृषि क्षेत्र में बढ़ोत्तरी, ग्राम के आबादी में वृद्धि, पशु के चारे में उपलब्धता, मवेशियों के संख्या में वृद्धि, जलाऊ लकड़ी की उपलब्धता या सिंचाई के साधनों में वृद्धि जैसे विषयों को चित्रों या प्रतीकों का प्रयोग करते हुए विभिन्न काल खण्डों में पाया जाना भी देखा जा सकता है।

(7) मौसमी कलेण्डर

ग्रामीण जीवन में मौसमी परिवर्तनों का काफी अधिक महत्व है। प्रत्येक ऋतु की अपनी जरूरतें और समस्यायें होती हैं और हर ऋतु के अनुकूल ग्रामीणों की रहन–सहन की शैली और दिनचर्या में भी परिवर्तन होता है। मौसमी परिवर्तन ग्रामीणों के जीवन में खान-पान, रोजगर, बीमारी आदि से भी काफी अंतरंग संबंध रखता है। अतः मौसम के बदलने के साथ ग्रामीणों के जीवन में आने वाले परिवर्तनों को समझना बहुत जरूरी है। यह कार्य जमीन पर या कागज पर खीचें गये रेखा चित्रों या चित्रों के माध्यम से किया जा सकता है। मौसमी कलेण्डर के माध्यम से ग्राम में विभिन्न मौसमों में वर्षा की मात्रा, रोजगार की उपलब्धता, विभिन्न वनोपज की उपलब्धता, चारे और जलाऊ लकड़ी की उपलब्धता तथा अन्य बहुत–सी बातों की जानकारी मिल सकती है।

(8) खाद्य पदार्थ चित्रण

इसके अंतर्गत ग्रामीणों के सहयोग से बारह महीने वे जिन खाद्य पदार्थों का उपयोग करते हैं उनका चित्रण किया जाता है। इसके लिए जमीन पर ही बारह महीनों के कालम में संबंधित खाद्य पदार्थों या उसके प्रतीकों के माध्यम से प्रदर्शित करने का प्रयास किया जाता है। इससे खाद्य पदार्थों की उपलब्धता किस माध्यम से कितनी होती है, का भी आंकलन होता है।

(9) वरीयता निर्धारण एवं सारणी क्रमबद्धता

इस विधि से किसी कार्य या योजना के बारे में ग्रामीणों की रुचि या चाहत की प्राथमिकता का पता लगाया जा सकता है जोकि विभिन्न कार्य या वस्तु विशेष के गुण या अवगुणों के तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित

होता है। इसमें एक तालिका बनाकर एक तरफ वस्तु या कार्य लिखकर तुलना के मापदंडों को सूचीबद्ध किया जाता है। तुलनात्मक मानदंड ग्रामीणों द्वारा स्वयं के नजरिये से तय किये जाते हैं।

(10) सम्पत्ति आधारित वरीयता

इसके द्वारा गांव के सभी व्यक्तियों की कुल सम्पत्ति का मूल्यांकन कर क्रमानुसार सूची बनायी जाती है, जिसमें सबसे धनवान व्यक्ति का नाम सबसे ऊपर तथा उसके नीचे क्रमशः कम सम्पत्ति वाले व्यक्तियों के नाम लिखे जाते हैं। सम्पत्ति का आंकलन करने में कृषि भूमि, सिंचाई के साधन, मवेशियों की संख्या, लघु उद्योग, मशीन, उपकरणों की उपलब्धता, ऋण ग्रस्तता आदि का ध्यान रखा जाता है।

इस वरीयता क्रम के निर्धारण के लिए उतनी ही पर्चिंया बनायी जाती हैं जितनी की गांव में परिवार हों फिर इन पर ग्राम के परिवारों के मुखिया का नाम लिख लेते हैं इसके बाद सबसे पूछकर उसके सम्पन्नता या विपन्नता के क्रम में इन पर्चियों को ऊपर या नीचे बिछाया जाता है। जो क्रम ग्रामीणों को सर्वमान्य होता है उसे कागज के एक टुकड़े पर उतार लिया जाता है यह सूची ही गांव की सम्पत्ति आधारित वरीयता दर्शाती है।

(11) चपाती चित्रण

चपाती चित्रण की पद्धति से विभिन्न संस्थाओं या व्यक्तियों को ग्राम में भूमिका तथा महत्वपूर्ण निर्णय लेने में उनकी तुलनात्मक महत्व का पता लगाया जा सकता है।

इस प्रक्रिया में अधिक महत्वपूर्ण लोगों या संस्थाओं को दर्शाने के लिए बड़े वृत्तों का और उनसे जुड़े कम महत्व के व्यक्तियों या संस्थाओं के आपसी संबंधों को इन टुकड़ों के बीच की दूरी से दर्शाया जाता है। उदाहरण के लिए यदि ग्राम में मौजूद ये व्यक्ति या संस्थाए एक दूसरे पर कोई प्रभाव नहीं डालते हैं तो इन्हें दर्शाने वाले वृत एक दूसरे से सटे नहीं होंगे। जबकि आपस में सटे हुए या आंशिक रूप से एक दूसरे को ढ़कते हुये वृत इन व्यक्तियों के आपसी संबंध का पता देंगे।

चपाती चित्रण से सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक संगठनों या व्यक्तियों के अलावा बैंक, सहकारी संस्थाओं, चिकित्सालय, बाजार, शासकीय या गैर शासकीय संगठनों आदि का ग्रामीणों के नजर में कितना महत्व है यह समझा जा सकता है। इसलिये विभिन्न प्रकार के संस्थाओं या व्यक्तियों के लिए अलग-अलग चपाती चित्र बनवाये जा सकते हैं।

(12) प्रक्रिया या गतिशीलता चित्रण

प्रक्रिया चित्रण सहभागी ग्रामीण समीक्षा की एक महत्वपूर्ण विधि है। इस विधि से स्थानीय उत्पादों के उत्पादन से लेकर बाजार में बेचने तक के विभिन्न स्तरों पर अपनाई गई प्रक्रिया का सूक्ष्म विश्लेषण किया जा सकता है। इस विधि द्वारा विभिन्न उत्पादों, सेवाओं, कौशल उन्नयन के प्रवाह ग्रामीण अर्थव्यवस्था में नियोजन एवं हस्तक्षेप के स्तर को भी चित्रित किया जा सकता है।

(13) दैनंदिनी कार्य

इसके अंतर्गत ग्रामीणों को प्रातः से लेकर रात्रि तक के क्रियाकलापों का चित्रण किया जाता है। इसको ज्ञात करने में इस बात का ध्यान रखा जाता है कि आशिक्षित ग्रामीण जो निश्चित समय नहीं बता सकते उनसे सूर्य उदय, दोपहर, सूर्यास्त एवं सोने के पूर्व आदि समयों पर उनके द्वारा किये गये कार्यों का चित्रण करने को कहा जाता है। इस विधि से ग्रामीणों की गतिशीलता का स्वरूप ज्ञात हो जाता है तथा यह भी निश्चित करना कि उनका कौन–सा समय खाली रहता है तथा उसका किस प्रकार उपयोग किया जा सकता है की जानकारी प्राप्त हो जाती है।

(14) व्यय का स्वरूप

ग्रामीणों की आय जानने के प्रयास में प्रायः पूर्ण सफल नहीं हो पाते हैं क्योंकि एक तो पूछने पर उनके मन में संदेह पैदा होता है, दूसरे वे विविध योजनाओं में लाभार्थी बने इसके लिए उनके व्यय के स्वरूप को ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है। इसमें विभिन्न वस्तुओं पर व्यय की मात्रा का चित्रण कराया जाता है। जिससे स्पष्ट होता है कि आधारभूत आवश्यकता, जैसे रोटी कपड़ा मकान आदि सुविधाओं के ऊपर उनकी आय का कितना प्रतिशत व्यय होता है। व्यय के स्वरूप की जानकारी में भी विशेष सावधानी बरतनी पड़ती है और इसके लिए क्रास चेकिंग पद्धति से तथ्यों को सत्यापित करके ही निष्कर्ष निकालना चाहिये।

(15) भूमि का उपयोग का स्वरूप

इस मानचित्र में कृषि क्षेत्र में विभिन्न फसलों का विवरण दिखाने के अलावा भूमि उपयोग के अन्य तरीकों जैसे वागवानी, वानिकी, वृक्षारोपण, बिगड़े वन, चारागाह, पड़त भूमि, खदान आदि दर्शाये जाते हैं। अन्य प्रकार के भूमि के उपयोग हेतु उसे मानचित्र पर दर्शाकर इसकी उपयोगिता में वृद्धि की जा सकती है।

16. स्वाट विश्लेषण

स्वाट विश्लेषण किसी मुद्दे या समस्या विशेष पर समूह के द्वारा परीक्षण कर इसमें अंतनिर्हित शक्तियों, कमजोरियों, अवसरों तथा खतरे के बारे में विचार करने की पद्धति है। वास्तव में स्वार्थ शब्द अंगरेजी के चार शब्दों Strengths, Weekness, Opportunites तथा Threats के प्रथम अक्षरों को मिलाने से बना संक्षिप्त नाम है। इसके तहत किसी समस्या का परीक्षण या विश्लेषण करते समय उसे उपरोक्त चार बिन्दुओं पर परखा जाता है और समूह के विचार लिखे जाते हैं। यह अभ्यास छोटे-छोटे दो तीन समूहों में कराकर फिर कागज की एक बड़ी सीट पर चार लाइनें खींचकर उसे चार स्तम्भों में बांट लेते हैं। फिर इन स्तम्भों में शक्तियों, कमजोरियों, अवसर तथा खतरे के शीर्षक अंकित कर दिये जाते हैं। इसके उपरान्त विचाराधीन मुद्दे से जुड़े विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखते हुए ग्राम में उपलब्ध शक्तियों, कमजोरियों, अवसरों व खतरों का क्रमशः इनके लिये निर्धारित स्तम्भ में लिख लिया जाता है।

●

8

विकेन्द्रित नियोजन का संवैधानिक प्रावधान

भारत में प्रारंभ से ही केन्द्रीकृत प्रशासनिक व्यवस्था अपनायी गयी थी जिसमें प्रशासनिक एवं वित्तीय उत्तरदायित्व केन्द्र सरकार के पास सीमित थे। यद्यपि इस व्यवस्था में विकास प्रक्रिया न केवल संचालित हुई बल्कि कुछ क्षेत्रों में आशातीत सफलताऐं भी प्राप्त हुईं। परंतु कुछ ही समय पश्चात् इस व्यवस्था के परिणामस्वरूप क्षेत्रीय असंतुलन एवं विषमताएं उभर करके आई जिसके चलते समस्त राजनीतिक व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन करना आवश्यक समझा जाने लगा। इसके लिए सर्वप्रथम सक्रिय रूप से देश के युवा प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने प्रयास किये। उन्होंने कई समितियाँ जैसे गाड़गिल समिति, राव समिति, लक्ष्मीमल सिंघवी समिति इत्यादि का निर्माण किया। श्री राजीव गांधी की मृत्यु के पश्चात् प्रधानमंत्री बने श्री नरसिम्हां राव जी ने उपरोक्त प्रतिवेदनों को क्रियान्वित करते हुए दो संविधान संशोधन 73वें एवं 74वें पारित करवाये, जिससे वास्तविक प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को बल मिला। 73वाँ एवं 74वाँ संविधान संशोधन 24 अप्रैल एवं 20 अप्रैल 1993 को प्रकाशित किया गया। इसके द्वारा भाग 9 एवं 9ए को जोड़ा गया। भाग 9 जो 73वाँ संविधान संशोधन से संबंधित है, में पंचायत को पुनः संगठित करने का प्रयास किया गया और भाग 9ए जो कि 74वाँ संविधान संशोधन था, में नगरपालिकाओं के संबंध में विस्तृत प्रावधान किये गये।

74वें संविधान संशोधन के प्रमुख प्रावधान :– इस संविधान संशोधन के द्वारा पूर्व के नगर पालिका अधिनियमों को परिवर्तित करके कुछ नये महत्वपूर्ण प्रावधान किये गये। जो निम्नलिखित हैं–

(1) नगर पंचायत नगरपालिका संशोधन

लोकसभा में पारित पंचायत राज एवं नगरपालिका विधेयक 1992 में संविधान में 74वाँ संशोधन करके 20 अप्रैल 93 को 'सरकारी गजट' में प्रकाशित कर दिया गया था और उसी दिन से सम्पूर्ण भारत में यह कानून प्रभावी हो गया है।

(2) नगरपालिकाओं का संविधान

धारा 243 क्यू 1 के अनुसार नगरपालिकाओं का गठन प्रत्येक राज्य में किया जाएगा। वह इस प्रकार से होगा–

1. नगर पंचायत एक परिवर्तनशील क्षेत्र कहलाएगा। जैसा कि एक क्षेत्र ग्रामीण से शहरी क्षेत्र में परिवर्तित कर दिया जाए।
2. छोटे शहरी क्षेत्र के लिए एक म्यूनिस्पिल काउन्सिल होगा।
3. नगर निगम (म्यूनिसिपल कार्पोरेशन) एक शहर के बड़े क्षेत्र के लिए जैसा कि इस भाग में प्रावधानों के अनुसार हो बशर्ते नगरपालिका इस धारा के अन्तर्गत संगठित हो।

इस अनुच्छेद में परिवर्तनशील क्षेत्रों, छोटे शहरी क्षेत्रों अथवा एक विशाल शहरी क्षेत्र का अभिप्राय ऐसे शहरी क्षेत्र से है जैसा कि राज्यपाल उपयुक्त समझे। निम्नलिखित कारणों के अनुसार क्षेत्र की जनसंख्या के आधार पर, जनसंख्या के घनत्व के आधार पर, मालगुजारी अथवा राजस्व आय जो स्थानीय प्रशासन के लिए अर्जित की जाती हो, गैर कृषक गतिविधियों में लगे रोजगार में लगे प्रतिशत या आर्थिक महत्व संबंधी किन्हीं कारणों को दृष्टिगत करके राज्यपाल उक्त क्षेत्र का या ऐसे अन्य कारण को दृष्टि में रखते हुए एक सार्वजनिक विज्ञप्ति द्वारा प्रकाशित करके उक्त क्षेत्र को नगरपालिका एवं नगर घोषित पंचायत कर सकता है।

उपरोक्त किन्ही कारणों के आधार पर क्षेत्र ग्रामीण क्षेत्र से टाउन एरिया नगर पालिका अथवा नगर निगम में परिवर्तित किये जा सकते हैं।

जिला योजना समिति अधिनियम

धारा 243 जेड डी 1. के अनुसार राज्य के अंतर्गत जिलेस्तर पर नियोजन समितियों का गठन किया जाएगा। ये समितियाँ पंचायतों और नगर पालिकाओं द्वारा तैयार की गई योजनाओं के प्रस्ताव के विकास के लिए कार्य करेंगी। जिला नियोजन समिति ऐसे सभी योजनाओं को एक सूत्र में बांधकर उसकी समीक्षा और क्रियान्वयन करेंगी।

2. राज्य असेम्बली अपने कानून द्वारा निम्नलिखित व्यवस्था इस संबध में कर सकती है–

(क) जिला नियोजन समिति का निर्माण।

(ख) इस समिति में स्थानों को किस प्रकार भरा जाए इस पर विचार करना। बशर्ते जिला स्तर पर पंचायतों तथा नगरपालिका के

निर्वाचित सदस्यों की संख्या में चौथे से पाँचवें सदस्य कमेटियों हेतु लिए जायेंगे और ये अनुपात भी बनाये रखा जाएगा कि ग्रामीण क्षेत्रों की जनसंख्या की अनुपात की सीमा क्या है? उसी अनुसार सदस्यों की चयन इन नियोजन समितियों हेतु किया जायेगा।

(ग) जिला नियोजन से संबधित कार्य को इन समितियों को सौंपा जायेगा।

3. प्रत्येक जिला नियोजन समिति विकास कार्य के लिए योजना इस प्रकार बनायेगी–

(क) इस संबंध में–

1. पंचायतों एवं नगर पालिकाओं के मध्य में संबंधित योजनाओं जैसे विकास के ढाँचे को और अधिक सुदृढ़ बनाना, साथ में ये प्राकृतिक सम्पदाओं का संरक्षण करना, जल के निकास और उसका बँटवारा करना।

2. उपलब्ध उन सभी स्त्रोतों चाहे ये वित्त से संबन्धित हों या अन्य प्रकार के हों, उनको विकसित करना।

3. राज्यपाल जैसे आज्ञा करें या विशिष्ट रूप से आदेश पारित करें उस कार्य के संबंध में प्रमुख संगठनों एवं संस्थाओं से सम्पर्क करना अनिवार्य है।

4. जिला नियोजन समिति का चेयरमैन, अध्यक्ष अथवा सभापति जो भी नियुक्त किया गया हो, की अध्यक्षता में गठित समिति द्वारा अनुशंसा किये गये विकास कार्यों की योजना को प्रदेश सरकार अनुमोदन करेंगी।

9

मध्य प्रदेश में विकेन्द्रीकृत नियोजन–जिला सरकार

मध्य प्रदेश जिला योजना समिति अधिनियम (1995)

"भारत के संविधान के अनुच्छेद 243 में जिले हेतु समेकित विकास योजना तैयार करने के लिए प्रत्येक जिले में जिला योजना मण्डल गठन करने की व्यवस्था की गई है। इस अनुच्छेद में अन्य बातों के साथ–साथ जिला योजना समिति के गठन, की वह रीति जिसके द्वारा सदस्यों का चयन किया जाएगा तथा वह रीति जिसके द्वारा अध्यक्ष निर्वाचित किया जाएगा तथा उन समितियों को दिये जाने वाले कृत्यों के संबंध में भी राज्य द्वारा विधान बनाये जाने का उपबंध है।

विधान मण्डल द्वारा पारित किये जाने पर म. प्र. जिला योजना समिति अधिनियम 1995 को राज्यपाल की अनुमति 19 मई 1995 को प्राप्त हुई। यह अधिनियम म. प्र. राजपत्र क्रमांक 243 दिनांक 23 मई 1995 के पृष्ठ 485–486()6 पर हिन्दी में तथा 486(7) से 486(8) पर अंग्रेजी में प्रकाशित किया गया।

राज्य शासन ने मूल अधिनियम में संशोधन करने के लिए म. प्र. जिला योजना समिति (संशोधन) विधेयक 1999 विधान सभा में प्रस्तुत किया। विधान सभा द्वारा यह विधेयक 24 मार्च 1999 को पारित किया गया। महामहिम राज्यपाल की अनुमति 28 मार्च 1999 को प्राप्त हुई और यह अनुमति मध्य प्रदेश राजपत्र असाधारण में दिनांक 29 मार्च 1999 के रूप में प्रकाशित किया गया।

(1) जिला योजना समिति

जिले में पंचायतों तथा नगर पालिकाओं द्वारा तैयार की गई योजनाओं को समेकित करने तथा सम्पूर्ण जिले के लिए विकास योजना का प्रारूप तैयार करने के लिए तथा ऐसी अन्य शक्तियों का प्रयोग करने के लिए जैसा

कि उन्हें राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर सौंपी गई हों. के लिए प्रत्येक जिले में एक जिला योजना समिति का गठन किया गया है। जिला योजना समिति विकास योजना का प्रारूप तैयार करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखेगी–

1. पंचायतों तथा नगर पालिकाओं के बीच सामान्य हितों के मामले जिसमें स्थान विषयक योजना, जल का बंटवारा अन्य भौतिक तथा प्राकृतिक संसाधन, अधोसंरचना का एकीकृत विकास और पर्यावरण संबंधी संरक्षण भी सम्मिलित है।
2. उपलब्ध संसाधनों चाहे जो हों के आधार पर ही योजना की सीमा निर्धारित की जाती है।
3. जिला योजना समिति ऐसे संगठनों से परामर्श करेंगी जिन्हें राज्य सरकार, आदेश द्वारा विनिर्दिष्ट करें।

समिति की संरचना

1. प्रत्येक जिले के लिए समिति में इतनी संख्या में सदस्य होंगे जितना अधिनियम में प्रावधान किये गये हैं।
2. समिति के सदस्यों की कुल संख्या के 4/5 सदस्य जिला पंचायत तथा नगर पालिकाओं के द्वारा उनमें से विहित रीति में निर्वाचित किये जायेंगे। ग्रामीण तथा नगरीय क्षेत्रों से निर्वाचित किये जाने वाले सदस्यों की संख्या का अनुपात यथा सम्भव निकटतम रूप से वही होगा, जिस अनुपात में जिले में नगरीय तथा ग्रामीण क्षेत्रों की जनसंख्या है। जहाँ जिले के नगरीयं क्षेत्रों में एक से अधिक नगर पालिकाएं हैं वही नगरीय क्षेत्रों के स्थान में ऐसी नगर पालिकाओं में से विहित रीति से वितरित किये जायेंगे। समिति के शेष सदस्य होंगे–

(क) म. प्र. का एक मंत्री जिसे सरकार द्वारा निर्देशित किया जाये, समिति का अध्यक्ष होगा।

(ख) जिला पंचायत का अध्यक्ष।

(ग) जिले का कलेक्टर (डीएम)।

(घ) जहाँ पर अनुसूची में यथा विनिर्दिष्ट समिति के सदस्यों की संख्या

अ– बीस है तो एक सदस्य या

ब– पच्चीस है तो दो सदस्य जो राज्य सरकार द्वारा नाम निर्देशित किये जायेंगे।

विशेष आंमत्रित सदस्य – ऐसे निर्वाचन क्षेत्रों का जो जिले में पूर्णतः या अंशतः समाविष्ट है प्रतिनिधित्व करने वाले लोक सभा के सदस्य तथा राज्य विधान सभा के सदस्य समिति के सम्मिलनों में विशेष आमंत्रित सदस्य होंगे। राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले राज्य सभा सदस्य पसन्द के एक जिले की समितियों के सम्मेलनों में विशेष आमंत्रित सदस्य होंगे।

ऐसे आमन्त्रित सदस्य, जो मंत्री या सांसद हैं, समिति की बैठक में अपनी ओर से उपस्थित होने के लिए एक प्रतिनिधि का नाम निर्दिष्ट कर सकेंगे।

(3) **निर्वाचित सदस्यों की अवधि** – समिति के निर्वाचित सदस्य यदि वह यथा स्थिति जिला पंचायत या नगर पालिका का सदस्य नहीं रह जाता है तो समिति का सदस्य भी नहीं रह जाएगा। किसी सदस्य की मृत्यु या त्यागपत्र के कारण हुये रिक्त स्थान धारा 4 के उपबंध के आधार पर भरे जाएगें।

(4) **समिति के कृत्य** – समिति निम्नलिखित कृत्यों का पालन करेंगी–

1. राष्ट्रीय तथा राज्यस्तरीय उद्देश्यों के ढाँचें के भीतर रहते हुए स्थानीय आवश्यकताओं तथा राष्ट्रीय उद्देश्यों का अभिनिर्धारण करना।
2. योजनाओं को विकेन्द्रीकृत करने के लिए ठोस आकड़ों का आधार सृजित करने हेतु जिले की प्राकृतिक तथा मानव संसाधनों से संबंधित जानकारी का संग्रहण, संकलन, तथा उपयोग करना और जिले एवं खण्ड के संसाधनों की रूपरेखा तैयार करना।
3. ग्रामखण्ड तथा जिला स्तरों पर सुख–सुविधाओं को सूचीबद्ध करना तथा उसका निरूपण करना।
4. उपलब्ध प्राकृतिक / मानव संसाधनों के अधिकतम तथा न्याय सम्मत उपयोग / विदोहन को सुनिश्चित करने की दृष्टि से विकास के लिए नीतियों, कार्यक्रमों तथा प्राथमिकताओं का निर्धारण करना।
5. पंचायतों तथा नगरीय निकायों द्वारा तैयार की गई योजनाओं को समेकित करते हुए जिले के सामाजिक, आर्थिक, भौतिक, सामायिक

तथा स्थान संबंधी आयामों के परिप्रेक्ष्य में जिले की पंचवर्षीय और वार्षिक योजना का प्रारूप तैयार करना तथा उसे राज्य की योजना में सम्मिलित करने हेतु राज्य सरकार को प्रस्तुत करना।

6. जिले के लिए रोजगार योजना तैयार करना।
7. जिले की योजना के वित्तपोषण के लिए वित्तीय संसाधनों का प्राक्कलन तैयार करना।
8. जिले के विकास की योजना के सम्पूर्ण ढांचे के भीतर रहते हुए क्षेत्रीय उपक्षेत्रीय परिव्ययों का आवंटन करना।
9. विकेन्द्रीकृत योजना के ढाँचे के अन्तर्गत जिले में कार्याविन्त की जा रही स्कीमों / कार्यक्रमों जिसमें प्रान्तीय सेक्टर / केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमें और संसदीय निर्वाचन क्षेत्रों तथा विधान सभा निर्वाचन क्षेत्रों की स्थानीय क्षेत्र विकास स्कीमें भी सम्मिलित हैं, की प्रगति को मानीटर करना, उसका मूल्यांकन तथा पुनर्विलोकरन करना।
10. जिला योजना में सम्मिलित स्कीमों के संबंध में नियमित प्रगति रिपोर्ट राज्य सरकार को प्रस्तुत करना।
11. ऐसी स्कीमों, कार्यक्रमों का अभिनिर्धारण करना जिसमें संस्थागत वित्त पोषण किया जाना अपेक्षित है उन्हें जिला योजनाओं के साथ समुचित रूप से संबंध करने के उपाय करना तथा यह सुनिश्चित करना कि उन्हें ऐसे वित्तीय विधान अपेक्षित मात्रा में प्राप्त होते रहें।
12. विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया में स्वेच्छित संगठनों की सहभागिता को सुनिश्चित करना।
13. जिले के विकास की प्रक्रिया पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालने वाली राज्य सेक्टर की स्कीमों के संबंध में राज्य सरकार को सुझाव देना।
14. कोई अन्य कृत्य जो राज्य सरकार द्वारा जिला योजना समितियों को सौंपी जाए।

(5) समिति की शक्तियाँ

1. राज्य सरकार के कामकाज के संबंध में ऐसी शक्तियों का प्रयोग कर सकेगी जैसे कि उसे राज्य सरकार द्वारा इस अधिनियम के अधीन अधिसूचित किये जाए अथवा आवंटित किये जाए।
2. राज्य सरकार वह रीति विहित / अधिसूचित कर सकेगी जिसमें ऐसी शक्तियों का जो समिति को इस प्रकार अधिसूचित या आंवटित हैं, का प्रयोग कर सकें।

3. ऐसी शक्तियों का प्रयोग करते समय, समिति राज्य सरकार के अधीनस्थ निकाय के रूप में समझी जाएगी और इन शक्तियों का प्रयोग राज्य सरकार की ओर से तथा उसके निमित करेगी।

(6) सचिव

जिले का कलेक्टर समिति का सचिव होगा तथा समिति का अभिलेख तैयार करना तथा समिति के विनिश्चयों को संसूचित करना तथा उसे सशक्त करना तथा अन्य सभी आनुषांगिक मामलों के लिए जिम्मेदार होगा।

(7) उपसमितियों का गठन

1. समिति इस अधिनियम के अधीन उसको सौंपे गये एक या एक से अधिक कृत्यों के निर्वहन के लिए उपसमितियों का गठन कर सकेगी।
2. उपधारा 1 में अन्तर्विष्ट उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना निम्नलिखित विशिष्ट प्रयोजन के लिए उपसमितियाँ विहित रीति से गठित की जाऐंगी।
3. जिले में रोजगार अवसरों के सृजन को मानीटर करने तथा स्वरोजगार सृजित करने वाली स्कीमों के कार्यान्वयन का समन्वय करने के लिए।
4. अनुसूचित जनजातियों, अनुसूचित जातियों, पिछड़े वर्गों तथा कमजोर वर्गों के कल्याण की विशिष्ट स्कीमों के लिए योजना बनाने तथा उसका समन्वय करने के लिए।

(8) समिति का सम्मिलन

1. समिति का सम्मिलन वित्तीय वर्ष के प्रत्येक तिमाही में कम से कम एक बार आयोजित किया जाएगा।
2. समिति के सम्मिलन, निश्चित तारीख तथा समय पर जिला मुख्यालयों पर आयोजित किये जायेंगे।
3. अध्यक्ष अथवा उसकी अनुपस्थिति में उपस्थित सदस्यों द्वारा निर्वाचित सदस्य समिति की बैठक की अध्यक्षता करेंगे।
4. समिति अपने सम्मिलनों में उपस्थित होने के लिए विशेषज्ञों को आंमत्रित कर सकेगी।

5. सम्मिलन में उपस्थित होने के लिए अशासकीय सदस्यों तथा विशेषज्ञों को ऐसे यात्रा भत्ता तथा अन्य सुविधायें जैसे कि विहित किये जाए, दिये जायेगें।
6. राज्य सरकार के किसी नियम या जारी किये गये मार्गदर्शक सिद्धान्त के अधीन रहते हुए समिति स्वयं अपनी प्रक्रिया विनियमित करेगी।

(9) नियम बनाने की शक्ति

राज्य सरकार, इस अधिनियम के प्रावधानों को कार्यान्वित करने के लिए नियम बना सकेगी।

कठिनाईयाँ दूर करने की शक्ति

इस अधिनियम के उपबंधों को प्रभावशाली ढ़ंग से क्रियान्वित करने में यदि कोई कठिनाई होती है तो राज्य सरकार, आदेश द्वारा, इस अधिनियम के उपबंधों में असंगत होने वाली किसी भी प्रावधान के स्थान पर ऐसे प्रावधान कर सकेगी जो ऐसी कठिनाइयों को दूर करने के लिए आवश्यक प्रतीत हो।

वर्तमान कानूनों एवं नगर पालिकाओं को निरंतर बने रहना

धारा 243 जेड में संविधान के 74वें संशोधन कानून द्वारा नगर पालिकाओं को राज्यों में तुरन्त प्रभावी करने हेतु जो व्यवस्था कर दी गई है, वह उस समय तक प्रभावी रहेगी जब तक कि राज्य असेम्बली द्वारा स्वयं अपने कानून में संशोधन अथवा उस धारा को समाप्त नहीं कर देती। संशोधन प्रभावी होने के एक वर्ष तक या उसके पूर्व उक्तधारा को निष्प्रभावी भी कर सकती है। अन्यथा वह समस्त धाराएं जिनका संशोधन सदन द्वारा किया गया है, नगर पालिकाओं पर प्रभावी रहेगा। बशर्ते वह सभी वर्तमान मौजूदा नगर पालिकायें अपने कार्यकाल की अवधि समाप्ति तक कार्य करती रहेंगी।

निर्वाचन संबंधित मामलों एवं निर्वाचन हस्तक्षेप पर प्रतिबंध— धारा 243 जेड जी में निम्नलिखित प्रावधान हैं–

1. निर्धारित क्षेत्रों का परिसीमन कार्य अथवा सीटों का आवंटन अथवा उससे संबंधित कोई भी कानून जो अनुच्छेद 243 जेड(ए) में दिया गया है, उसकी वैधता को न्यायालय द्वारा प्रश्न चिन्ह नहीं लगाया जा सकता है।

2. अनुच्छेद 280 की उपधारा 3 में धारा के पूर्व निम्नलिखित उपखण्ड को सम्मिलित किया जाएगा–

ख. प्रदेश की नगर पालिका के स्त्रोतों को विकसित करने हेतु धनकोष बनाने के उपाय किये जाएगें। जैसा कि प्रदेश का वित्त आयोग अनुशंसा करेगा।

3. प्रत्येक पाँच वर्ष पर निर्वाचन की अनिवार्यता।
4. संशोधन के लिए विकेन्द्रीकृत नियोजन प्रणाली का प्रावधान।
5. जिला योजना समिति के निर्माण का प्रावधान।
6. निर्वाचनों का संबंध राज्य के धन से जोड़ना।
7. राजनीतिक दलों के चिन्हों पर चुनाव न लड़ने का प्रावधान।
8. नगरीय निकाय के प्रतिनिधियों का निर्वाचन सीधे जनता से कराने का प्रावधान।
9. अनुसूची 12 के अन्तर्गत नगरीय निकायों के कार्यों के विषयों का प्रावधान।
10. पूरे जिला के नगरीय एवं ग्रामीण निकायों के क्षेत्रों में समग्र विकास के लिऐ समेकित योजनाओं के निर्माण का प्रावधान।
11. स्थानीय स्तर की नियोजन योजनाओं का क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन स्थानीय स्तर पर करने के लिए।
12. प्रांतीय सरकार द्वारा अनेक आवश्यक शक्तियों के प्रत्यायोजन का प्रावधान।

नगरीय निकायों के कार्यों के विषयों का प्रावधान से संबंधित 12वीं अनूसूची में कुल 18 विषय दिये गये हैं, जिन्हें चार भागों में वगीकृत किया जा सकता है–

1. संसाधनों के सातत्य से संबंधित।
2. जनस्वास्थ एवं जनकल्याण से संबंधित।
3. आधारभूत संरचना से संबंधित।
4. पंजीयन एवं अभिलेखों से संबंधित।

इस प्रकार मध्य प्रदेश में जिला सरकार की स्थापना के द्वारा ग्रामीण

स्थानीय संस्थाओं एवं नगरीय स्थानीय संस्थाओं के कार्यों को समेकित करते हुये जिला नियोजन का प्रावधान किया गया है। मध्य प्रदेश सरकार इसके अगले चरण में विकेन्द्रीकृत नियोजन को ग्राम स्तर तक पहुँचाने के लिए ग्राम सरकार के गठन का प्रावधान भी करने जा रही है। इसके द्वारा निश्चय ही विकेन्द्रीकृत नियोजन एवं सहभागी विकास की प्रक्रिया समस्त मध्य प्रदेश में सूक्ष्म स्तर तक संचालित होने की संभावना है।

10

भारत में विकेन्द्रीकरण की दिशा में उठाये गए कदम

स्थानीय स्वराज्य अथवा स्वायत्त शासन जनता की स्थानीय समस्याओं के समाधान के लिये जनप्रतिनिधियों द्वारा सीमित क्षेत्र में शासन का नाम है। इसके अन्तर्गत ऐसी नागरिक समस्यायें आती हैं, जिनका स्थानीय महत्व होता है। स्थानीय स्वराज्य अथवा स्वायत्त शासन की संस्थायें सत्ता के विकेन्द्रीकरण एवं जनतंत्र की सफलता के लिए अनिवार्य हैं। इसके साथ ही साथ स्वायत्त शासन ऐसी व्यवस्था है जिसके अर्न्तगत लोग स्वयं अथवा अपने प्रतिनिधियों के द्वारा सार्वजनिक महत्व की समस्यायों के निराकरण में सहभागिता निभाते हैं। यही कारण है कि इसे "प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण" के नाम से भी पुकारते हैं।

प्रायः यह प्रश्न पूछा जाता है कि क्या स्थानीय शासन एवं स्थानीय स्वायत्त शासन दोनों एक ही हैं ? यद्यपि उपरोक्त दोनों शब्दावलियों का सम्बन्ध विकेन्द्रीकरण से ही है किन्तु स्थानीय सरकार एवं स्थानीय स्वायत्त शासन दोनों अलग-अलग शब्द हैं, जिनको एक सन्दर्भ में प्रयोग नहीं किया जा सकता है। स्थानीय सरकार केन्द्रीय सरकार की इकाई होती है, जबकि स्वायत्त शासन स्वयं अपने में एक पूर्ण संस्था होती है। जब शासन में जनता की भागीदारी रहती है तो इसे स्वायत्त शासन कहते हैं। स्थानीय स्तर पर प्रशासनिक कृत्यों के संपादन में यदि जन सहभागिता पायी जाती है तो उसे स्थानीय स्वशासन कहा जाता है। स्थानीय सरकार को नीति निर्धारण का अधिकार नहीं होता है तथा उसका कार्य प्रायः वैतनिक नौकरशाही (कर्मचारी) द्वारा किया जाता है। जबकि स्थानीय स्वायत्त शासन का कार्य अधिकतर जनता के चुने हुये प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता है तथा उसे नीति निर्धारण का भी पूरा अधिकार होता है। किसी भी देश में स्थानीय स्वायत्त शासन या विकेन्द्रीकरण शासन की स्थापना करके केन्द्र स्थानीय स्तर के दायित्वों को इन संस्थाओं को हस्तांतरित कर देती है, जिसके निम्नांकित उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है–

(i) इससे नागरिक भावना का विकास होता है।

(ii) इसके कारण केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों की जिम्मेदारियों में कमी आती है।

(iii) इससे जनता की प्रशासन में रुचि जाग्रत होती है।

(iv) स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप समस्याओं का समाधान स्थानीय स्वायत्त शासन के द्वारा ही संभव है।

(v) राजनैतिक विकेन्द्रीकरण का यह सबसे सशक्त माध्यम है।

(vi) जनता में आत्मनिर्भरता की भावना का विकास इसकी सबसे बड़ी विशेषता है।

(vii) इससे नागरिकों में देशभक्ति व राष्ट्रीय भावना का विकास भी होता है।

(viii) यह नागरिकों के बहुमुखी विकास में सहायक सिद्ध हुआ है।

(ix) यह जनतंत्र की पाठशाला है, क्योंकि इसके द्वारा प्रत्यक्ष प्रजातंत्र की भावना का विकास होता है।

भारत में स्वायत्त का उद्‌भव एवं विकास

भारत में स्वायत्त शासन का विकास वैदिक काल से ही प्रारम्भ होता है। वेदों में ग्राम के अधिकारी "ग्रामणी" के अलावा राजा की परामर्शदात्री दो संस्थायें सभा तथा समितियों का उल्लेख प्राप्त होता है। आर्यों के प्रारम्भिक संगठनों का नाम जन था जो किसी पूर्व प्रतापी पुरुष अथवा विद्यमान शक्तिशाली पुरुष के नाम पर होता था। उस समय राजा के प्रशासनिक कृत्यों के सहायतार्थ दो संस्थायें – 'सभा' और 'समितियां' कार्य करती थीं। जैसा कि अथर्ववेद में कहा गया है कि –

" सभा च मा समितिश्चावतां, प्रजापते र्दुहितरौ संविदाने।

येना संगच्छा उप मास शिक्षाच्चारू वदानि पितरः संगतेषु।।

अर्थात् सभा और समिति प्रजापति की पुत्रियाँ हैं, वे मेरी रक्षा करें। वे मुझे उत्तम शिक्षा 'समुचित परामर्श' दें, संगत में एकत्र हुए " पितर" लोग समुचित भाषण करें।

इसके बाद के उत्तरवैदिक कालीन ग्रन्थों, जैसे – ब्राह्मणों, अरण्यकों, उपनिषदों, पुराणों एवं माहाकाव्यों में भी इस प्रकार की संस्थाओं के अस्तित्व

का उल्लेख प्राप्त होता है। मौर्यों की शासन प्रणाली तथा सम्पूर्ण राजकाज में जनता की भागीदारी थी। साथ ही साथ स्वायत्त शासन की संस्थायें भी "पंचायत" के रूप में विद्यमान थीं।

इस काल की जानकारी मेगस्थनीज के वर्णन, कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा अशोक के अभिलेखों से प्राप्त होता है। इस काल की स्वायत्तशासी संस्थाओं को "ग्रामसंघ" कहा जाता था तथा इसके सदस्यों को "ग्राम बृद्ध" कहा जाता था। ग्रामों में अनेक लोककल्याणकारी कार्य इसके द्वारा संपादित किए जाते थे। गुप्तकाल में पंचायत व्यवस्था का उद्भव हुआ। इस काल में इन पंचायतों को "पंचमंडली" कहा जाता था।

स्थानीय स्वायत्त शासन की एक सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था का उल्लेख दक्षिण भारत के तमिलनाडु प्रान्त के उत्तर मेरूर नामक स्थान पर प्राप्त हुये शिलालेख में मिलता है। यह शिलालेख चोलकालीन है, जिसमें ग्राम शासन के लिये अनेक समितियों का ज्ञान प्राप्त होता है। इन समितियों में किसी भी कारण से अयोग्य घोषित व्यक्ति सदस्य नहीं हो सकता था। यह व्यवस्था आधुनिक पंचायती राज व्यवस्था के लिये एक आदर्श का कार्य करती रही है।

मध्ययुगीन ग्रामीण प्रशासनिक संस्थाओं पर विस्तार से प्रकाश डालने वाले अनेक अभिलेख, शिलालेख एवं ताम्रपत्र अधिकांशतः दक्षिण भारत से प्राप्त हुए हैं। इस काल में प्राप्त प्रशासनिक व्यवस्था का संक्षिप्त विवरण यहाँ पर दिया जा रहा है।

इस काल में प्रत्येक ग्राम में एक "सभा" या "महासभा" थी जो समस्त प्रशासनिक कार्यों के लिए उत्तरदायी थी। इसमें ग्राम के वयस्क नागरिक होते थे। किन्तु कुछ वयस्कों को सदस्यता नहीं भी थी जैसे एक शिलालेख के अनुसार एक ग्राम के 400 वयस्क नागरिकों में से मात्र 300 नागरिक ही इस सभा के सदस्य थे। इसका अधिवेशन या तो मंदिर में होता था या किसी वृक्ष की छाया में किया जाता था। कुछ ग्रामों में सभागार होने का उल्लेख भी प्राप्त होता है। सभा ही ग्राम पंचायतों में सर्वोच्च संस्था थी। ग्रामसभा अपने विविध कार्यों के सम्पादनार्थ अनेक समितियाँ बनाती थी। इनकी संख्या यद्यपि भिन्न-भिन्न ग्रामों में प्रकृति के अनुरूप अलग-अलग थी किन्तु प्रायः निम्नांकित समितियां आवश्यक एवं प्रमुख थीं। प्रायः समस्त ग्रामों में पायी जाती थीं–

1. वार्षिक प्रशासन समिति,
2. दान समिति,
3. सरोवर समिति,
4. उपवन संरक्षण समिति,
5. न्यायिक व्यवस्था समिति,
6. स्वर्ण एवं कोष संरक्षक समिति,
7. ग्राम सुरक्षा निरीक्षण समिति,
8. खेत एवं मैदानों की सुरक्षा निरीक्षण समिति,
9. मंदिर प्रबंधक समिति,
10. साधु सन्यासी संरक्षक समिति।

उपरोक्त समितियों के कार्य उनके नामों से ही स्पष्ट हैं। इन समितियों के निर्वाचन का एक अत्यन्त ही मनोरंजक एवं विस्तृत विवरण दक्षिण भारत में एक अभिलेख में पाया जाता है। अभिलेख में उल्लेखित गाँव को तीस क्षेत्रों के विभक्त करके प्रत्येक क्षेत्र के लिए उस क्षेत्र के निवासियों द्वारा अपने बीच से ही एक-एक व्यक्ति लाटरी द्वारा चयनित किया जाता था। इस निर्वाचन में यथासंभव ईमानदारी संबधी समस्त एहतियात बरते जाते थे। इस प्रकार चयनित व्यक्तियों में से योग्यता एवं पूर्व अनुभव के आधार पर विभिन्न समितियों के सदस्यों का चयन किया जाता था। इनके चयन के संबंध में प्रावधान था कि वही व्यक्ति सदस्य होगा जो –

1. विगत तीन वर्षों में किसी समिति में न रहा हो।
2. पूर्व में यदि किसी समिति में सदस्य रहा हो तो अपना हिसाब-किताब दे दिया हो।
3. पंच महापापों या किसी अन्य पाप या अपराध का अपराधी या अपराधी का संबंधी न हो।
4. 35 से 70 वर्ष के मध्य की आयु का हो।
5. शिक्षित ईमानदार व कुछ संपति भी रखता हो।

सदस्यों की योग्यता से ही स्पष्ट है कि उस काल में जनता की मानसिकता अत्यन्त ही उत्तम थी। निर्वाचन संबंधी व्यापक नियम इन संस्थाओं के अति लोकतांत्रिक स्वरूप को इंगित करते हैं। इस काल में

लोकतांत्रिक विधानों को पर्याप्त आदर देते हुए स्वाभाविक राजनीतिक बुराइयों को समाप्त करके सबके लिए अवसर की समानता एवं उपलब्धता प्रदान किया जाता था।

इस संबंध में निर्मित नियमों को प्रसिद्ध इतिहासकार डा0 मजूमदार ने दूरदर्शिता एवं बुद्धिमानी से युक्त अनोखे तथा अद्वितीय बताया है।

ग्राम पंचायतों को इस काल में ग्रामस्तर पर वे समस्त अधिकार प्रदान किए गए थे, जो एक राज्य के पास होता है। जिसके कुछ प्रमुख कार्य निम्नांकित थे–

1. सामूहिक हित के लिए सार्वजनिक सम्पत्ति का बंधक रखना या विक्रय करना।
2. जघन्य अपराधों के अलावा समस्त विवादों का निपटारा।
3. सार्वजनिक दानों का संरक्षण करना।
4. जनता द्वारा जमा धन या भूमि इत्यादि की व्यवस्था करना।
5. सार्वजनिक हित के लिए बाजार इत्यादि पर कर लगाना।
6. ग्राम निवासियों से बेगार लेना।
7. पीने के पानी, बगीचों, नहरों, यातायात के साधनों, जलाशयों, उद्यानों, खेतों, चारागाहों एवं मैदानों की देखरेख।
8. दुर्भिक्ष के समय जनता एवं निर्धनों की सहायता।
9. सरकारी करों का नियंत्रण एवं वसूली।
10. आकस्मिक आपत्तियों, शत्रुओं एवं डाकुओं इत्यादि से सुरक्षा।
11. ग्राम की भूमि पर नियंत्रण एवं उसकी व्यवस्था।
12. ग्राम विधानों का निर्माण तथा उस पर राजा की स्वीकृति प्रदान करना।
13. समय-समय पर ग्रामीण समस्याओं के निवारणार्थ राजा से भेंट करना।
14. शिक्षा एवं मंदिरों की व्यवस्था करना।

यद्यपि इस काल में केन्द्र में निरंकुश शासन हुआ करते थे किन्तु इन संस्थाओं के कारण जनता की स्वंतत्रता पूर्णतया सुरक्षित थी। मध्यकाल में

यह व्यवस्था पूरे भारत में पायी जाती थी। दक्षिण भारत के समान ही उत्तर भारत में भी ग्रामसभाओं की सत्ता थी। गाँव की जनता अपने से संबंधित समस्याओं का निवारण करने में खुद ही सक्षम एवं आत्मानिर्भर थी। यही कारण है कि मध्यकाल में निरन्तर युद्ध होने के बावजूद सर्वसाधारण लोगों पर उसका प्रभाव नहीं पड़ता था।

भारत में राजपूतों के शासन की समाप्ति के बाद मुस्लिम शासन प्रारम्भ हुआ। उनके काल में स्वायत्त शासन की संस्थाओं का प्राचीन कालीन रूप शेष तो रहा, किन्तु मुस्लिम शासकों के केन्द्रीकरण की नीतियों के चलते यह जीर्ण-शीर्ण अवस्था में पहुँच गया। यह स्थिति अंग्रेजों के आगमन के पूर्व तक बनी रही। अंग्रेजों के आगमन के पश्चात गाँव के मुखिया का पद महत्वहीन हो गया। जिसका मुख्य कारण जमींदारी व्यवस्था थी। इसके तहत भूमिकर वसूली का दायित्व एक ऐसे मध्यस्थ व्यक्ति को प्रदान किया गया जो कि सरकार व खेतिहर मजदूरों के बीच में होते थे तथा जिन्हें जमींदार कहा जाता है। इसके कारण ग्रामीण स्वायत्तता प्रभावित हुई। केन्द्रीकरण की प्रक्रिया के चलते विकेन्द्रीकृत संस्थाओं का अस्तित्व ही समाप्त हो गया। यद्यपि ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत केन्द्रीकरण पर ही बल दिया गया किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि स्थानीय स्तर पर उस काल में विकेन्द्रित संस्थायें बनी ही नहीं। 1687 में मद्रास में एक नगर निगम बनाया गया। लार्ड मेयो के आगमन के पूर्व भारत में स्वायत्त शासन की संस्थायें नाम मात्र को थीं। स्वायत्त शासन के वर्तमान स्वरूप का विकास यद्यपि 1870 से प्रारम्भ होता है किन्तु मद्रास में 1687 में, कलकत्ता में 1720 में और बम्बई में 1793 में कारपोरेशनों की स्थापना की ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा किया गया। 1773 के रेग्यूलेटिंग अधिनियम द्वारा नगर महापालिका की स्थापना एवं उन्हं कर लगाने के अधिकार भी दिये गये।

लार्ड मियो के पश्चात लार्ड रिपन ने सत्ता के विकेन्द्रीकरण की दिशा में किये जा रहे प्रयासों को और अधिक व्यापक और पुष्ट रूप दिया। इसी कारण लार्ड रिपन को भारत में स्वायत्त शासन का जनक कहा जाता है। 1882 में लार्ड रिपन द्वारा यह प्रस्ताव प्रकाशित किया गया। 1907 में शाही विकेन्द्रीकरण आयोग ने अब तक किये गये प्रयासों का मूल्यांकन किया। 1916 में विकेन्द्रीकरण आयोग की रिपोर्ट प्रस्तुत हुई। इसके पश्चात् मई 1918 में पुनः एक प्रस्ताव इस दिशा में भारत शासन द्वारा प्रस्तुत किया गया। 1918 से 1950 तक का समय अनेक दृष्टियों से प्रगति का युग रहा। जैसे

(i) 1919 के अधिनियम द्वारा द्वैध शासन स्थापित होना।

(ii) अनेक प्रान्तों में विलेज पंचायत अधनियम पारित होना, जैसे बिलेज पंचायत अधिनियम यू0 पी0 एण्ड बरार, 1920, महाराष्ट्र विलेज पंचायत अधिनियम।

(iii) 1935 के भारत शासन अधिनियम द्वारा किये गये प्रावधान।

स्वतंत्रता के पूर्व स्वायत्त शासन की दिशा में जो भी प्रमुख प्रयास हुये वे प्रायः इसी युग में हुये थे।

भारत में स्थानीय स्वशासन या विकेन्द्रीकरण की संस्थायें

समस्त भारत में स्वायत्त शासन की संस्थायें कार्य करती हैं, इनका कार्य क्षेत्र दो प्रकार का होता है –

1. नगरीय स्वायत्त शासन,
2. ग्रामीण स्वायत्त शासन।

नगरीय क्षेत्रों में कार्य करने वाली स्वायत्त शासन की इकाइयों को हम निम्नलिखित शीर्षकों के अर्न्तगत बता सकते हैं–

1. नगर निगम,
2. नगर पालिकायें,
3. अधिसूचित क्षेत्र समितियाँ,
4. नगर क्षेत्र समितियाँ,
5. विशेष क्षेत्र विकास प्राधिकरण,
6. छावनी बोर्ड,
7. विकास न्यास अथवा समितियाँ,
8. संघीय समितियाँ,
9. स्थानीय बोर्ड,
10. पोर्ट ट्रस्ट और बन्दरगाह प्रशासन बोर्ड।

ग्रमीण क्षेत्रों में कार्य करने वाली स्वायत्त शासन की संस्थायें निम्नांकित हैं –

1. पंचायती राज की संस्थायें,
2. सामुदायिक विकास योजना क्षेत्र।

वर्तमान समय में उपयुक्त क्षेत्रों को मिलाकर त्रिस्तरीय पंचायतीराज को ही ग्रामीण स्थानीय स्वायत्त शासन के रूप में स्थापित किया गया है।

प्रारम्भ में संविधान में स्वायत्त शासन से संबंधित प्रावधानों का अभाव था। किन्तु महात्मा गाँधी की प्रेरणा के बाद नीति निर्देशक सिद्धान्तों के तहत संविधान के अनुच्छेद 40 में यह प्रावधान कर दिया गया कि राज्य स्थानीय स्वायत्त शासन की स्थापना के लिए प्रयास करेगा। भारत के संविधान में कहा गया कि सभी नागरिकों को राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक समानता मिलेगी। इस स्वप्न को पूरा करने के लिए विकास के अनेक कार्य प्रारम्भ किए गए। देश और राज्य स्तर पर विकास की अनेक योजनायें बनायी गयीं। जिला स्तर पर कलेक्टर और अलग-अलग विभागों ने इन योजनाओं को लागू करने की जिम्मेदारी सभांली।

स्वतंत्र भारत की सरकार द्वारा स्वतंत्रता के पश्चात् एक सबसे बड़ी ग्रामीण पुनर्निमाण की परियोजना संचालित की गयी, उसे सामुदायिक विकास कार्यक्रम कहा जाता है। यह कार्यक्रम एक अमेरिकी विचार था, जिसे अमेरिका के अनुभवों के आधार पर विकसित किया गया था तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की सहायता से लागू भी किया गया था। यह फरीदाबाद एवं नीलूखेड़ी के प्रयोगों के अनुभवों पर भी आधारित था।

2 अक्टूबर 1952 को सामुदायिक विकास एवं प्रसार कार्यक्रमों को सर्वप्रथम लागू किया गया। इसके अर्न्तगत एक समुदाय अर्थात् एक ही स्थान पर रहने वाले तथा समान अधिकारों आदि का उपभोग करने वाले व्यक्तियों के निकाय के रहन-संहन के स्तर में सर्वतोमुखी सुधार का सचेष्ट प्रयत्न किया गया। यद्यपि इसमें अनेक विशेषताओं से युक्त कार्यक्रम थे किन्तु इस कार्यक्रम की निम्नलिखित 4 प्रमुख विशेषतायें थीं–

1. व्यापक स्वरूप,
2. आर्थिक पुनर्निमाण-केन्द्रीय तत्व,
3. योजना का अवयवी रूप,
4. निम्नतमस्तर पर बहु-उदेद्श्यीय कार्यकर्ता।

यद्यपि इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये जो कार्यकलाप थे उनकी सूची बड़ी लंबी थी, किन्तु उनमें से कुछ प्रमुख क्षेत्र नीचे दिये जा रहे हैं –

1. कृषि तथा समवर्ती क्षेत्र,
2. संचार साधन ,
3. शिक्षा ,

4. स्वास्थ्य,
5. रोजगार,
6. आवास,
7. समाज कल्याण आदि।

सामुदायिक परियोजना के साथ ही साथ उसके एक वर्ष उपरान्त 1953 में "राष्ट्रीय प्रसार सेवा " प्रारम्भ की गई जिसने एक दशक में सम्पूर्ण देश को आच्छादित कर लिया। यद्यपि सामुदायिक विकास कार्यक्रम की अपेक्षा यह कम लम्बा-चौड़ा कार्यक्रम था। किन्तु दोनों का ही उद्देश्य ग्रामीण पुनर्निर्माण करना था।

प्रसार को हम द्विमुखी प्रक्रिया कह सकते हैं। एक ओर यह अन्वेषण विधियों द्वारा अध्ययन का एक तरीका है। दूसरी ओर इसके द्वारा अन्वेषण से प्राप्त तकनीकों, जानकारियों एवं उपायों को जनता तक पहुंचाया जाता है। इस प्रकार इसके तहत ग्रामीणों को अपना जीवन स्तर खुद की सहायता से सुधारने के लिये प्रेरित किया जाता है। "अधिक अन्न उपजाओ जाँच समिति" 1952 के अनुसार कोई भी योजना तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक कि गाँवों के लाखों किसान योजना के उद्देश्य को समझकर उसे अपना सहयोग न दें, उसे स्वयं अपनी न समझें और उसके कार्यान्वयन के लिये आवश्यक बलिदान करने के लिये तत्पर न हों। इस प्रकार उपरोक्त उद्देश्यों के पहले कदम के रूप में राष्ट्रीय प्रसार सेवाओं का संगठन किया गया था, फिर उन्हें ही सामुदायिक विकास खण्डों में परिवर्तित किये जाने का कार्यक्रम था। राज्य के स्तर पर राष्ट्रीय प्रसार सेवा तथा सामुदायिक विकास कार्यक्रम दोनों के क्रियान्वयन के लिये एक ही प्राधिकरण की स्थापना की गई थी। इस प्रकार जिला स्तर एवं ग्राम स्तर के बीच में विकास का काम करने के लिए विकास खंड बनाए गए।

"बलवन्त राय मेहता समिति का प्रतिवेदन"

1956 में बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया जिसने विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को एक नई दिशा दिया। इस समिति की स्थापना "योजना परियोजना समिति" ने राष्ट्रीय परियोजनाओं एवं राष्ट्रीय विकास सेवा के अध्ययन के लिये किया था। अध्ययन का उद्देश्य विकास कार्यों में कैसे मितव्ययता के साथ ही कुशलता भी लायी जा सके,

का ज्ञान प्राप्त करना था। इस समिति ने 1957 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें निम्नांकित प्रमुख कमियों का उल्लेख था –

1. "सामुदायिक विकास तथा राष्ट्रीय प्रसार सेवा" की गतिविधियाँ जिनके लिए बनायी गयीं, जनता में अपने कार्यक्रमों को प्रारम्भ करने की प्रवृत्ति जागृत करने में असफल रही थीं।
2. पंचायत स्तर के ऊपर के स्थानीय निकायों के सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के सम्बन्ध में कोई उत्साह नहीं दिखाया था।
3. पंचायतों ने भी सामुदायिक विकास में कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं निभायी।
4. जनता की सहभागिता इन कार्यक्रमों में नगण्य रही जिसके कारण यह कार्यक्रम अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में असफल रहा।

इन कमियों को दूर करने के लिये समिति ने "त्रिस्तरीय प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण" जो "पंचायती राज" के नाम से प्रसिद्ध हुआ, की स्थापना करने का सुझाव दिया था, जिसके तीन स्तर निम्नानुसार थे –

1. ग्राम स्तर पर – ग्राम पंचायत एवं ग्राम सभा।
2. खण्ड स्तर पर – पंचायत समिति।
3. जिला स्तर पर – जिला परिषद।

बलवन्त राय मेहता समिति के प्रतिवेदन के आधार पर राष्ट्रीय विकास परिषद ने प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण के रूप में जनवरी 1959 "पंचायती राज" की स्थापना का अनुमोदन किया। 2 अक्टूबर 1959 को सर्वप्रथम राजस्थान के नागौर जिले में भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू द्वारा त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था का उद्घाटन किया गया। इसके पश्चात् धीरे-धीरे अन्य प्रान्तों में भी पंचायती राज अधिनियम पारित किये गये।

"अशोक मेहता समिति" का प्रतिवेदन एवं अन्य समितियाँ

जनता पार्टी के शासन काल में पंचायती राज व्यवस्था के मूल्यांकन के लिये अशोक मेहता के नेतृत्व में एक समिति का गठन किया गया था, जिसने त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था के स्थान पर द्विस्तरीय पंचायती राज

व्यवस्था का सुझाव दिया तथा विकास खण्ड के नीचे दस-दस ग्रामों के मण्डल बनाने का भी सुझाव दिया। दो स्तर जिला एवं विकासखण्ड स्तर पर संस्थाओं का यथावत प्रावधान किया गया था। किन्तु जनता शासन के पतन के पश्चात इस समिति के सिफारिशों को रद्दी की टोकरी में फेंक दिया गया। पंचायती राज व्यवस्था के मूल्यांकन के लिए समय-समय पर अनेक समितियों का गठन किया गया।

पंचायती राज की प्रगति के जाँच के लिये बनी कुछ प्रमुख समितियों का विवरण अग्रांकित है–

1. श्री जी. व्ही. के. राव समिति 1985।
2. लक्ष्मीमल सिंहवी समिति 1986।
3. वी.के. थंगन समिति 1988।
4. बी. एन. गाडगिल समिति 1989।

इसके अलावा योजना आयोग, राजनीतिज्ञों, स्वंयसेवी संस्थाओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं एवं विषय विशेषज्ञों ने भी समय-समय पर अपने मूल्यांकनों के आधार पर सुझाव दिए जिससे निम्नांकित बातें स्पष्ट हुयीं :–

1. देश की समस्याओं में कोई बड़ा बदलाव नहीं आया है और समस्याओं ज्यों की त्यों बनी हुई हैं।
2. पिछले पचास वर्षों में विकास के पथ पर बढ़ते हुए हमें नाम एवं नाकामी दोनों ही मिले हैं।
3. सरकार ने समस्याओं को दूर करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली। नतीजा यह हुआ कि लोग सरकार से सेवा व सुविधायें हासिल करके सरकारी विभागों पर निर्भर होकर रह गए।
4. लोगों का अपनी ताकत पर विश्वास कम हुआ है। विकास एवं सामाजिक बदलाव में लोगों की भागीदारी लगभग नहीं रही है।
5. लोगों के साधनों एवं क्षमता का समुचित उपभोग नहीं हो पाया।

उपरोक्त निष्कर्षों पर विचार करने के पश्चात् यह अनुभव हुआ कि वर्तमान पंचायती राज व्यवस्था में परिवर्तन आवश्यक हो गया है। इसके लिए 73वां एवं 74 वां संविधान संशोधन किया गया। 73वें संविधान संशोधन का

उद्देश्य सरकार को लोगों के अधिक नजदीक ले जाना था। इसके पूर्व के पंचायती राज व्यवस्था में यद्यपि पाँच वर्षों में पंचायतों के निर्वाचन का प्रावधान था किन्तु नेतृत्व उसे टालता रहता था। इसी प्रकार उस व्यवस्था में दलित एवं शोषित व्यक्तियों के प्रतिनिधित्व का अभाव था। पंचायतों के विषयों का प्रावधान भी संविधान में नहीं था। सबसे प्रमुख कमी यह थी कि पंचायतों को धन जो केन्द्र से मिलता था वह एक निश्चित उद्देश्य से मिलता था, जिसमें पंचायत की स्वायत्तता का अभाव था तथा स्थानीय आवश्यकताओं, आंकाक्षाओं की भी अवहेलना प्रायः किया जाता था। इन कमियों को 73वें संविधान संशोधन में दूर करने का प्रयास किया गया है जिसकी प्रमुख बातें निम्नांकित हैं –

1. प्रदेश के नीचे जिला स्तर, विकासखंड स्तर तथा ग्राम स्तर पर पंचायतों का गठन किया जाये।
2. पंचायतें संविधान के तहत काम करेंगी अर्थात् कोई भी राज्य अपनी मर्जी से इस व्यवस्था को समाप्त नहीं कर सकता है।
3. गाँव के सभी मतदाताओं को मिलाकर ग्रामसभा का गठन किया जायेगा।
4. संसद एवं विधानसभाओं की तरह ही हर पाँच वर्ष पश्चात् पंचायतों के चुनाव की अनिवार्यता कर दिया गया है।
5. निष्पक्ष ढंग से चुनाव सम्पन्न कराने के लिए प्रत्येक राज्य अपने राज्य चुनाव आयोग बनायेंगे।
6. पंचायत के मुख्य काम होंगे – सबको सामाजिक न्याय दिलवाना तथा क्षेत्र का विकास करना।
7. पंचायतों को आर्थिक सहयोग देने के लिए राज्य स्तर पर एक वित्त आयोग बनाये जाने का प्रावधान है।
8. अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों एवं महिलाओं के लिये आरक्षण की व्यवस्था का प्रावधान है।
9. ग्रामस्तर पर ही नियोजन एवं क्रियान्वयन के निर्णय लिये जाने के प्रावधान भी हैं।

73वें भारतीय संविधान संशोधन द्वारा अनुच्छेद 243–जी के तहत जोड़े गये प्रावधानों के अनुसार पंचायतों को अपने क्षेत्र की सीमा के अंतर्गत

जनकल्याण, आर्थिक एवं सामाजिक विकास के कार्यों को सम्पादित करने तथा सामाजिक न्याय एवं आर्थिक विकास से सम्बन्धित योजनाओं के निर्माण एवं क्रियान्वयन का अधिकार दिया गया है। इसके लिए 29 विषय पंचायतों के अधिकार में दिये गये जिन्हें 11वीं अनुसूची के रूप में शामिल कर दिया गया है। वे 29 विषय निम्नांकित हैं –

ग्यारहवीं अनुसूची के रूप में भारत के संविधान में जोड़े गए पंचायतों के लिए प्रदत्त 29 विषय–

1. कृषि एवं उसमें शामिल कृषि विकास।
2. भूमि सुधार अथवा भूमि सुधार से सम्बन्धित कार्यों का क्रियान्वयन करना। भूमि चकबन्दी एवं भूमि का संरक्षण करना।
3. लघुसिंचाई के लिये पानी की व्यवस्था एवं पानी निकास का विकास करना।
4. पशुधन, दुग्ध उत्पादन एवं मुर्गीपालन का विकास करना।
5. मछली पालन।
6. जंगलों का लगाना, सामाजिक वानिकी एवं जंगलों का विकास करना।
7. लघु वन उत्पादित वस्तुओं को विकसित करना।
8. लघु उद्योगों जिसमें खाद्य प्रसंस्करण भी शामिल है, की स्थापना करना।
9. खादी ग्रामोद्योग एवं कुटीर उद्योगों को स्थापित करना।
10. ग्रामीण आवास की व्यवस्था करना।
11. पेय जल।
12. ईंधन तथा चारा।
13. सड़कें, पुलिया, पुल, फेरी, जलमार्ग और अन्य संचार साधन।
14. ग्रामीण विद्युतीकरण जिसके अंतर्गत विद्युत का वितरण है।
15. अपारंपरिक ऊर्जा स्रोत।
16. गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम।
17. शिक्षा, जिसके अन्तर्गत प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय भी हैं।

18. तकनीकी प्रशिक्षण और व्यावसायिक शिक्षा।
19. प्रौढ़ और अनौपचारिक शिक्षा।
20. पुस्तकालय।
21. सांस्कृतिक क्रियाकलाप।
22. बाजार और मेले।
23. स्वास्थ्य और स्वच्छता , जिसके अन्तर्गत अस्पताल, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र और औषधालय भी हैं।
24. परिवार कल्याण।
25. महिला और बाल दिवस।
26. समाज कल्याण, जिसके अन्तर्गत विकलांगों और मानसिक रूप से मंद व्यक्तियों का कल्याण भी है।
27. दुर्बलवर्गों का विशिष्टतया, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों का कल्याण।
28. सार्वजनिक वितरण प्रणाली।
29. सामुदायिक आस्तियों का अनुरक्षण।

पंचायत उपबंध (अनुसूचित क्षेत्रों पर विस्तार) अधिनियम, 1996

1 अधिसूचित क्षेत्रों सहित कुछ क्षेत्रों को पंचायत राज की सामान्य व्यवस्था से बाहर रखा गया है। उसी अनुच्छेद के भाग 4 ख के तहत अपवादों व रूपातंरणों के साथ उस व्यवस्था का अनुसूचित क्षेत्रों पर लागू करने का अधिकार संसद को है।

आदिवासी क्षेत्रों में सदैव से एक विशिष्ट संस्कृति का अस्तित्व रहा है। संविधान की पांचवी अनुसूची में सम्मिलित राज्यों जिनमें आदिवासी बहुल क्षेत्र समाहित है, के लिए अलग से प्रावधान हेतु 1996 में "भूरिया समिति" का प्रतिवेदन आया। भूरिया समिति के प्रतिवेदन के आधार 1996 में अधिसूचित क्षेत्र विशेष विस्तार अधिनियम संसद द्वारा पारित किया गया। इस अधिनियम की प्रमुख बातें अग्रांकित हैं :—

1. इन क्षेत्रों के सरपंच इत्यादि पदाधिकारी अनुसूचित जाति के ही होंगे।

2. एक ग्राम पंचायत के अंतर्गत आवश्यकतानुसार कई ग्रामसभायें भी हो सकती हैं।
3. ग्रामसभा की अध्यक्षता पंचायत का कोई भी पदाधिकारी नहीं करेगा, बल्कि बैठक की अध्यक्षता कोई भी ऐसा सदस्य करेगा जिसे उपस्थित सदस्यों के बहुमत से चुना जाये।
4. ग्रामसभा आपसी झगड़े तथा विवादों के निपटारे के लिए प्राचीन काल से परम्परा आधारित प्रचलित रीति-रिवाजों का भी प्रयोग कर सकती है। ग्रामसभा के निर्णयों को कोई भी अधिकारी परिवर्तित नहीं कर सकता है।
5. अनुसूचित क्षेत्र में ग्रामसभा को यह अधिकार है कि वह अपने यहाँ की जनजातीय समुदाय तथा व्यक्तियों की परम्परा, सांस्कृतिक पहचान तथा सामुदायिक साधनों को सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक साधन जुटाये।
6. ग्रामसभा अपनी सीमा में आने वाले जल-जंगल, जमीन की मालिक होगी तथा इसकी देखभाल करेगी।
7. गाँव में लागू की जाने वाली सभी योजनाओं पर ग्रामसभा का नियंत्रण होगा।

इस अधिनियम के द्वारा कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन करके पंचायत राज की व्यवस्था को अनुसूचित क्षेत्रों पर लागू किया गया। यह नई व्यवस्था 24 दिसम्बर 1996 से लागू हो गई है। इस व्यवस्था में पहली और अन्य बातों के अलावा उन बातों को खासतौर से शामिल किया गया है जो संविधान के अन्य प्रावधानों के साथ जुड़कर गाँव के स्तर स्वायत्त शासन की स्थापना के लिए भूमिका तैयार कर सकती हैं।

●

11

मध्य प्रदेश में पंचायती राज की प्रगति

देश के मध्यभाग में स्थित यह राज्य पाँच राज्यों से घिरा हुआ है। गुजरात तथा छत्तीसगढ़ को इसकी सीमायें राजस्थान, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र स्पर्श करती हैं। वर्तमान मध्यप्रदेश का जन्म 1 नवम्बर 1956 में हुआ था। तथा क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का सर्वाधिक विशाल राज्य था। इसका एक जिला सम्पूर्ण केरल राज्य से भी बड़ा था। इसका पुनः विभाजन करके छत्तीसगढ़ नामक नया राज्य का निर्माण कर दिया गया है। अपने निर्माण के समय मध्यप्रदेश में जिन पाँच क्षेत्रों का विलय किया गया था, वे थे – महाकौशल, मध्यभारत, विन्ध्य प्रदेश, भोपाल और सिरोंज। मध्यप्रदेश पंचायत अधिनियम 1962 को अधिनियमित करने के पूर्व इन पाँचों राज्यों में पंचायती व्यवस्था निम्नांकित पांच भिन्न-भिन्न अधिनियम द्वारा संचालित थी–

(1) सेण्ट्रल प्रोविन्सेज एण्ड बरार पंचायत ऐक्ट 1946, महाकौशल में।

(2) मध्यभारत पंचायत ऐक्ट, 1949 – मध्यभारत में।

(3) विंध्य प्रदेश पंचायत आर्डिनेंस, 1949 – विंध्य प्रदेश में।

(4) भोपाल स्टेट पंचायत राज ऐक्ट 1952 – भोपाल में।

(5) राजस्थान पंचायत ऐक्ट 1953– सिंरोज में।

बलवंतराय मेहता समिति के प्रतिवेदनों को दृष्टिगत रखते हुए उपरोक्त पाँचों प्रकार की व्यवस्था को समेकित करके मध्यप्रदेश विधानसभा द्वारा मध्यप्रदेश पंचायत अधिनियम, 1962 निर्मित किया गया। इस अधिनियम में आवश्यकतानुसार समय-समय पर अनेक संशोधन किए गए। 1993 में भारतीय संविधान में संशोधन करके त्रिस्तरीय पंचायती राज को नया स्वरूप प्रदान करने का प्रयास किया गया। यह गौरव का विषय है कि मध्यप्रदेश भारत का वह पहला राज्य है जिसने तिहत्तरवें संविधान संशोधन के पश्चात् पंचायती राज अधिनियम 1994 निर्मित किया। इस अधिनियम में भी तीन स्तर थे, जिनके नाम अग्रांकित हैं–

(i) जिला स्तर पर – जिला पंचायत।

(ii) विकास खंड पर – जनपद पंचायत।

(iii) ग्राम स्तर पर – ग्राम सभा व ग्राम पंचायत।

जिला पंचायत का संगठन एवं कार्य – जिला स्तर

मध्य प्रदेश में पंचायती राज के त्रिस्तरीय व्यवस्था के शीर्षस्तर पर प्रत्येक जिले में एक जिला पंचायत की स्थापना की गयी है। इस प्रकार पूरे मध्यप्रदेश में 45 जिला पंचायतें गठित की गयी हैं। प्रत्येक जिला पंचायत में पचास हजार की जनसंख्या पर एक वार्ड का गठन किया जाता है। हर वार्ड से एक सदस्य मतदाताओं द्वारा चुना जाता है। प्रत्येक जिला पंचायत में कम से कम दस तथा अधिकतम 25 वार्ड होते हैं। जिला पंचायत का गठन निम्नांकित सदस्यों को मिलाकर किया जाता है।

1. वार्ड मेम्बर,
2. उस जिले के ग्रामीण क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने वाला लोकसभा का सदस्य,
3. जिले की मतदाता सूची में दर्ज और चुना गया राज्य सभा का सदस्य,
4. जिले के सभी जनपद पंचायतों के अध्यक्ष।

जिला पंचायत के सदस्यों के समस्त पदों में से एक तिहाई पद महिलाओं के लिए आरक्षित किया है, साथ ही जिले में अनुसूचित जाति एवं अनूसूचित जनजाति की जनसंख्या के अनुपात में उनके लिए भी पद आरक्षित होते हैं। जिला पंचायत के सदस्यों के निर्वाचन के पश्चात् समस्त सदस्य अपने में से ही जिला पंचायत का अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष चयनित करते हैं। अध्यक्ष जिला पंचायत की समस्त बैठकों की अध्यक्षता करने के साथ ही साथ उसके द्वारा पारित प्रस्तावों को क्रियान्वित कराने का भी कार्य करता है। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष द्वारा उपरोक्त दायित्वों का निर्वहन किया जाता है। जिला पंचायत के प्रमुख काम निम्नांकित हैं –

- जिले के आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय के लिये वार्षिक योजना तैयार करना।
- जनपद पंचायतों द्वारा बनाई गई योजनाओं को जोड़कर समस्त जिले के लिये योजना तैयार करना।

- राज्य तथा केन्द्र सरकार से प्राप्त योजनायें नियमानुसार जनपद तथा ग्राम पंचायतों तक पहुँचाना तथा
- राज्य सरकार तथा केन्द्र सरकार से प्राप्त योजनाओं को ग्राम पंचायत के द्वारा लागू करवाना।

इस प्रकार जिला पंचायत प्रान्तीय एवं अधीनस्थ पंचायती राज संस्थाओं के मध्य कड़ी का कार्य करती है–

जनपद पंचायत का संगठन एवं कार्य

प्रत्येक जिले में विकास खण्ड के स्तर पर एक जनपद पंचायत का गठन कम से कम 5000 की जनसंख्या पर किया जाता है। एक विकास खण्ड में कम से कम 10 तथा अधिकतम 25 वार्ड होते हैं। प्रत्येक जनपद पंचायत में निम्नांकित सदस्य होते हैं।

(i) वार्डों से निर्वाचित मेम्बर,

(ii) विकासखण्ड के भीतर आने वाले विधान सभा क्षेत्र के विधायक,

(iii) एक वर्ष के लिये एक सरपंच के हिसाब से जनपद पंचायत के भीतर आने वाली पंचायतों के निर्वाचित अध्यक्ष।

एक अध्यक्ष एवं एक उपाध्यक्ष का चुनाव निर्वाचित समस्त सदस्य अपने में से करते हैं। जनपद पंचायत अध्यक्ष, जनपद पंचायत की समस्त बैठकों की अध्यक्षता करने के साथ ही साथ, जनपद पंचायत के दैनन्दिनी कार्यों एवं बैठकों में लिए गए निर्णयों का क्रियान्वयन करवाता है। जनपद पंचायत में भी एक तिहाई पद महिलाओं के लिए तथा अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए भी उनकी जनसंख्या के अनुपात में पद आरक्षित होते हैं।

मुख्य रूप से जनपद पचायत को निम्नांकित कार्यों का सम्पादन करना पड़ता है–

- अपने कार्यक्षेत्र के भीतर की सभी ग्राम पंचायतों द्वारा तैयार की गयी वार्षिक योजनाओं को मिलाकर एक योजना बनाकर उसे जिला पंचायत को भेजना।
- राज्य सरकार द्वारा दी गई योजनाओं को ग्राम पंचायतों के माध्यम से ग्राम स्तर पर लागू करवाना।
- ग्राम पंचायतों के बीच तालमेल बैठाने का कार्य करना।

- सामुदायिक विकासखण्ड तथा आदिम जाति विकासखण्ड के प्रशासन पर नियंत्रण रखना और इनकी सभी स्कीम व योजनाओं को जनपद पंचायत में सुझाव व निर्देश के आधार पर लागू करवाने के लिए प्रयास करना।

ग्राम पंचायत का गठन एवं कार्य

73वें संविधान संशोधन के बाद पंचायती राज में ग्राम पंचायत स्वशासन की पहली कड़ी है। मध्य प्रदेश में ग्राम पंचायत ग्राम सभा के अधीन रहकर काम करती है। इस प्रकार ग्राम सभा की कार्यकारिणी ही ग्राम पंचायत है।

कम से कम एक हजार की आबादी वाले ग्राम अथवा एक हजार से कम आबादी वाले कई ग्रामों को मिलाकर एक ग्राम पंचायत बनायी जाती है। ग्राम पंचायत ठीक ढ़ग से कार्य करे इसके लिये ग्राम पंचायत में से कम से कम 10 वार्ड एवं अधिक से अधिक 20 वार्ड इस प्रकार बनाये जाते हैं कि प्रत्येक वार्ड की जनसंख्या करीब-करीब एक समान हो।

ऐसे समस्त ग्रामवासी जिनका नाम मतदाता सूची में है। वार्ड मेम्बरों के चुनाव में मत दे सकते हैं तथा किसी भी पद के लिये चुनाव भी लड़ सकते हैं।

प्रत्येक ग्राम पंचायत में एक सरपंच, उपसरपंच तथा पंच होते हैं। सरपंच का चुनाव सीधे जनता द्वारा किया जाता है। प्रत्येक वार्ड से एक सदस्य पंच के रूप में चुना जाता है। हर चुनाव के पश्चात् सरपंच एवं पंच चुने गये सदस्यों में से ही एक व्यक्ति को उपसरपंच चयनित कर लेते हैं।

पंचायतों में आरक्षण के प्रावधान

पंचायतों में गरीब एवं कमजोर वर्ग की भागीदारी पक्की करने के लिए अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़ा वर्ग तथा महिलाओं के लिये वार्डों के आरक्षण की व्यवस्था की गई है।

प्रत्येक पंचायत में अनु. जाति और अ.ज.जाति की आबादी के अनुपात में कुल वार्डों में से सीटों का आरक्षण कर दिया जाता है।

- पंचायत में यदि अनु. जाति. और अनु. जन. जाति के लिये कुल आरक्षित वार्डों की संख्या ग्राम पंचायत के कुल वार्डों से आधे या उससे कम है तब कुल वार्डों के एक चौथाई स्थान पिछड़े वर्ग के लिये आरक्षित किये जाते हैं।

- पंचायत के वार्डों के आरक्षण से शेष बचे सीटों पर किसी भी वर्ग की पुरुष या महिला चुनाव लड़ सकती है।
- एक बार जब जातियों एवं वर्गों के वार्डों का आरक्षण हो जाये तो प्रत्येक वर्ग के कुल सीट संख्या में से तीसरा हिस्सा अर्थात् एक तिहाई वार्ड महिलाओं के लिये आरक्षित होंगे।
- हर वर्ग की सभी सीटों पर उस वर्ग की महिला चुनाव लड़ सकती है।

समाज के कमजोर वर्गों एवं महिलाओं के लिए सरपंच पद हेतु आरक्षण का प्रावधान है। इसके तहत –

- जनपद पंचायत में अनु. जाति एवं अनु. जन. जाति के कुल जनसंख्या के अनुपात में सरपंच का पद आरक्षित हो जाता है।
- यदि उपरोक्त दोनों के लिये आरक्षण पदों की संख्या कुल पदों के आधे से कम हो तो 25 प्रतिशत पद पिछड़े वर्ग के लिये आरक्षित कर दिये जायेंगे।
- सभी वर्गों के पदों में से एक तिहाई पद महिलाओं के लिये आरक्षित किये जायेंगे।

ग्राम पंचायत की बैठकों से सम्बन्धित प्रावधान

- ग्राम पंचायत की हर महीने एक बैठक होती है।
- कम से कम आधे सदस्यों की उपस्थिति अनिवार्य होती है।
- सरपंच की अनुपस्थिति में उपसरपंच तथा दोनों की अनुपस्थिति में बहुमत से चयनित कोई भी पंच उस दिन की बैठक की अध्यक्षता करता है।
- किसी विषय पर दोनों के मत बराबर होने पर अध्यक्ष का मत निर्णायक होता है।
- पंचायत की हर बैठक की कार्यवाही पंचायत सचिव के द्वारा बैठक रजिस्टर में लिखी जाती है।

ग्राम पंचायत के अधिकार एवं दायित्व

ग्राम पंचायत की यह जिम्मेदारी है कि –

- वह अपने गांव या गांवों की माली हालत और गांव वालों की हालत सुधारने के लिये योजना बनाये।

- यह देखे कि ग्राम सभा के फैसलों का क्रियान्वयन हो रहा है अथवा नहीं।
- वह सभी ऐसी संस्थाओं पर ग्राम सभा के सुझावों व निर्देश के अनुसार नियंत्रण रखे, जिन्हें राज्य सरकार ने ग्राम पंचायत को सौंपा है।
- अपने क्षेत्र में लागू की जाने वाली सभी योजनाओं, उनके संसाधनों और योजनाओं पर होने वाले खर्चों पर ग्राम सभा के निर्देश के अनुसार नियंत्रण रखे।
- केन्द्र सरकार , राज्य सरकार, जिला पंचायत तथा जनपद पंचायत से प्राप्त होने वाले कार्यक्रम तथा योजनाओं को ग्राम सभा के सुझाव तथा निर्देश के अनुसार लागू करे।
- अपने क्षेत्र के सभी संसाधनों -- जल, जंगल और जमीन पर ग्राम सभा के सुझाव व निर्देश के अनुसार नियंत्रण बनाये रखे।
- अधिनियम की धारा 49 के अनुसार उपरोक्त दायित्वों के निर्वहन के लिये पंचायतों का यह भी दायित्व बताया गया है कि जहाँ तक ग्राम पंचायत निधि में गुंजाइश हो, अपने क्षेत्र के भीतर नीचे लिखे काम करे --

1. साफ, सफाई रखे और सार्वजनिक असुविधा दूर करें।
2. कुंओं, तालाबों की मरम्मत, उनका निर्माण और घरेलू निस्तार के लिये पानी का इंतजाम करें।
3. नहाने, धोने और मवेशियों के पीने के पानी का इंतजाम करें।
4. सड़कों, पुलियों तथा सार्वजनिक इमारतों का रख-रखाव और निर्माण करें।
5. सार्वजनिक सड़कों, पुलियों तथा संडासों, नालियों का निर्माण और रख-रखाव करे।
6. अनुपयोगी कुंओं, तालाबों को भरना तथा बावड़ियों को स्वच्छ कुंओं में बदलना।
7. मार्गों एवं सार्वजनिक स्थानों पर रोशनी का इंतजाम करें।
8. सार्वजनिक स्थानों से बाधाओं, अतिक्रमणों को हटायें।

9. खेल, तमाशों दुकानों, भोजनालयों और खाद्य पदार्थों के दुकानदारों पर नियंत्रण रखें।
10. मकानों, संडासों, मूत्रालयों, नालियों के निर्माण के नियम बनायें।
11. सार्वजनिक भूमि का प्रबन्ध और विकास करें।
12. शवों और मरे हुये पशुओं के लिये स्थान तय करें।
13. कचरा इकट्ठा करने के लिये स्थान तय करें।
14. मांस की बिक्री व जांच के नियम बनायें।
15. ग्राम पंचायत की सम्पत्ति की रक्षा करें।
16. काजी हाउस की व्यवस्था करें।
17. लावारिस, ऐतिहासिक इमारतों और चारागाहों की देखभाल करें।
18. नये बाजार व मेलों का प्रारम्भ व उनका इंतजाम करें।
19. जन्म, मृत्यु और विवाह का रिकार्ड रखें।
20. जनगणना में सहायता करें।
21. छात्र के रोगों की रोकथाम में सहायता करें।
22. टीका लगाने में सहायता करें।
23. कमजोर व असहायों की सहायता करें।
24. युवाओं के कल्याण, परिवार कल्याण और खेलकूद को बढ़ावा दें।
25. आग लगने पर उसे बुझाने व उससे सम्पत्ति की सुरक्षा की व्यवस्था करें।
26. वृक्षारोपण करवायें तथा पंचायत वनों को बचायें।
27. दहेज जैसी सामाजिक बुराइंयों को दूर करें।
28. गरीब व्यक्तियों को गंभीर बीमारी और अंत्येष्टि के लिये उधार दें।
29. अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और पिछड़े वर्गों की दशा सुधारने के बारे में सरकारी आदेशों का पालन करें। साथ ही जनपद, जिला पंचायत एवं राज्य सरकार द्वारा सौंपे गये कार्य करें।

उपरोक्त दायित्वों और कार्यों को करने के लिये ग्राम पंचायत को मध्यप्रदेश पंचायत राज अधिनियम की धारा 54 से 61 तक निम्नांकित शक्तियां दी गयी हैं।

1. ग्राम पंचायत के इलाके में लोगों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिये ग्राम पंचायत–

- पंचायत क्षेत्र में खाद्य पदार्थों के व्यापार तथा चीजों के व्यापार को

त्रित कर सकती है।

- पंचायत के इलाके के विकास और उन्नति के लिये किसी ढ़ॉचे, इमारत और पेड़ को हटा सकती है।
- साफ, सफाई करने, पानी की निकासी की व्यवस्था करने और पानी के स्त्रोतों को बचाने का काम कर सकती है।
- पानी के उपयोग का इंतजाम इस प्रकार से कर सकती है कि जिससे सभी को जरूरत के अनुसार पानी मिल सके।
- कारखाने और उद्योग धंधों को शुरू करने के बारे में नियम बना सकती है।

2. पंचायत क्षेत्र में किसी भी प्रकार के भवन बनाने के पहले पंचायत की इजाजत जरूरी है।
3. पंचायत को सार्वजनिक रास्तों और खुले स्थानों पर रूकावट डालने या अतिक्रमण करने वाले पर जुर्माना लगाने का और ऐसी रुकावटें तथा अतिक्रमण हटाने का अधिकार है। इस जुर्माने की वसूली वैसे ही होगी जैसे जमीन के लगान की वसूली होती है। तहसीलदार इसमें पंचायत की मदद करेगा।
4. पंचायत को मार्गों को नामाकरण करने का अधिकार है।
5. अवैध रूप से कालोनी बनाने वाले को दण्ड देने का अधिकार भी पंचायत को है।

पंचायत कर्मी/पंचायत सचिव के कार्य एवं दायित्व

प्रत्येक ग्राम पंचायत के दैनिक कामकाज की देखभाल करने तथा नियमों के अनुसार ग्राम सभा के कामकाज निपटाने के लिये पंचायत सचिव/पंचायत कर्मी नियुक्त किया गया है। ग्राम पंचायत की प्रभावहीनता पंचायत सचिव पर ही कुछ निर्भर करती है। अतः उससे बहुआयामी क्षमता

अपेक्षित है। एक ओर तो वह ग्राम पंचायत का अधिकारी है, दूसरी ओर शासन के नियमों का रखवाला भी है। सचिव का मुख्य काम यह है कि –

- वह पंचायत के सभी दस्तावेजों तथा अभिलेख ठीक से तैयार करे तथा उन्हें रखे।
- ग्राम सभा, ग्राम पंचायत व समितियों की बैठक कराने व चलाने में सरपंच को सहयोग प्रदान करे।
- पंचायत की वार्षिक योजना, बजट व लेखा सम्बन्धी दस्तावेज तैयार करके ग्राम सभा की बैठक में रखे।
- जनपद तथा जिला पंचायत में तालमेल बनाये।
- तय किये गये समय के अनुसार प्रतिदिन ग्राम पंचायत का कार्यालय खोले।
- ग्राम पंचायत द्वारा किये जा रहे कार्यों की जानकारी प्रस्तुत करे।
- ग्राम पंचायत द्वारा लिये जाने वाले कार्यों के बारे में नियमों एवं कानूनों की जानकारी सरपंच को दे।

जिन विभागों के कार्य पंचायत को प्रत्यायोजित किये गये हैं, उन विभागों के अधिकारियों से मिलकर जानकारी प्राप्त करके सरपंच को कार्य बताना व सलाह देना।

ग्राम पंचायत के आमदनी के स्रोत

पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना के पीछे खास मकसद है कि गाँव के लोग पंचायत के जरिये गाँव की उन्नति करने का और अपनी हालत सुधारने का जिम्मा खुद उठाये। इसके लिये पंचायतों की आर्थिक, आत्मनिर्भरता सबसे आवश्यक है। मध्यप्रदेश पंचायती राज अधिनियम के अनुसार पंचायत की आय के मुख्य दो रास्ते हैं–

1. अपने खुद के साधनों से होने वाली आय,
2. बाहर से मिलने वाली आय,

अपनी आय बढ़ाने के साधन निम्नांकित हैं –

- खुद की आय के साधन विकसित करके,
- कर लगाकर,

- दान तथा चंदा लेकर,
- जुर्माना लगाकर,
- बैंक व अन्य संस्थानों से धन उधार लेकर,
- गौण खनिज व अन्य प्राकृतिक संसाधनों की नीलामी व व्यापार से,
- भू राजस्व का हिस्सा।

उपरोक्त में से कर लगाना सभी पंचायतों का स्त्रोत बन सकता है। पंचायतें दो प्रकार के कर लगा सकती हैं–

(i) अनिवार्य कर – जैसे – सम्पत्ति, सफाई, प्रकाश।

(ii) वैकल्पिक कर – बाजार इत्यादि पर लगने वाले कर।

ग्राम सभा उचित समझे तो कुछ अन्य कर भी लगा सकती है, जैसे – किराये पर चलने वाली बैलगाड़ी, सराय, धर्मशाला, जलकर, चारागाह, बैलगाड़ी एवं तांगा स्टैण्डकर एवं क्षेत्र के खनिज, जैसे– पत्थर, रेत, चूना इत्यादि पर लगाये गये रायल्टी कर इत्यादि।

हर पंचायत पास के सरकारी खजाने डाकघर या बैंक में पंचायत को मिलने वाली सभी आय को जमा करके पंचायत निधि की स्थापना करेगी। पंचायत निधि से सरपंच और सचिव दोनों के हस्ताक्षर से पैसा निकाला जायेगा। पंचायत निधि से तभी पैसा निकाला जायेगा जब पंचायत किसी कार्यों के लिये प्रस्ताव पारित कर देगी।

पंच एवं सरपंच को उनके पदों से हटाने का प्रावधान

यदि सरपंच, उपसरपंच अथवा ग्राम पंचायत का कोई भी अन्य अधिकारी पंचायत के हितों के विरुद्ध कार्य करता है तो उसके विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाकर उसे उसके पद से हटाया जा सकता है। किन्तु सरपंच व उपसरपंच के विरुद्ध निम्नांकित परिस्थितियों में अविश्वास प्रस्ताव नहीं लाया जा सकता –

- यदि उसको अपने पद से रहते एक वर्ष नहीं हुआ है।
- यदि कार्यकाल की समाप्ति में मात्र 6 माह बचे हैं।
- यदि अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत हुये एक वर्ष नहीं हुआ है।

ग्राम पंचायत द्वारा अविश्वास प्रस्ताव लाने व पास करने का तरीका इस प्रकार है –

- कम से कम एक तिहाई सदस्यों के हस्ताक्षर से प्रस्ताव सक्षम अधिकारी को दिया जाना चाहिये।
- अविश्वास प्रस्ताव के लिये अलग से विशेष बैठक बुलाई जायेगी।
- इस बैठक की अध्यक्षता सरपंच अथवा उपसरपंच के स्थान पर नियुक्त सरकारी कर्मचारी द्वारा की जायेगी।
- सरपंच / उपसरपंच भी चर्चा में भाग लेंगे, किन्तु मतदान नहीं करेंगे।
- प्रस्ताव तीन चौथाई उपस्थिति सदस्यों द्वारा पारित होने पर सरपंच / उपसरपंच का पद खाली हो जायेगा।

ग्राम सभा द्वारा अविश्वास प्रस्ताव

ग्राम सभा भी सरपंच / उपसरपंच / पंच जो ग्राम सभा के निर्देशों का पालन नहीं करते हैं, को नीचे लिखे तरीके से वापस बुला सकती है –

- ग्राम सभा के कुल सदस्यों की संख्या के एक तिहाई सदस्यों के दस्तखत वाले अभियोग पत्र को देना होगा, जिसके द्वारा गुप्त मतदान की तिथि व व्यवस्था की जायेगी।
- यह प्रक्रिया ढाई वर्ष पूरे कर लेने के पश्चात् ही की जा सकती है।
- यदि आधे से ज्यादा सदस्य वापस बुलाने के पक्ष में मतदान करते हैं तो सरपंच / पंच का पद तुरन्त खाली हो जायेगा।
- यदि हटाये गये पंच / सरपंच को ऐसा लगता है कि ग्राम सभा द्वारा हटाने की कार्यवाही नियमानुसार नहीं हुई है तो वह कलेक्टर के यहाँ सात दिन के भीतर विवाद ले जा सकता है तथा कलेक्टर 30 दिन के भीतर अपना फैसला सुनायेंगे।
- इसके अतिरिक्त अनुविभागीय अधिकारी द्वारा निम्नांकित अपराधों पर मुकद्मा चलाने की स्थिति में सम्बन्धित पदाधिकारी को उसके पद से निलम्बित किया जा सकता है।
- हत्या, बलात्कार से जुड़े संगीन अपराध।
- खाने के सामान व दवाओं के मिलावट के आरोप का मुकदमा।
- किसी भी ऐसे कानून जिसमें दण्ड की व्यवस्था हो उसके तहत मुकदमा।

इस प्रकार के निलम्बन की रिपोर्ट 10 दिन के अंदर भेजना अनिवार्य है। यदि राज्य सरकार 90 दिन के अंदर इसकी पुष्टि नहीं करती है, तो निलम्बन स्वतः बेअसर हो जायेगा।

मध्य प्रदेश के आदिवासी क्षेत्रों की पंचायतों के संबंध में उपबन्ध

भारत के संविधान की पाँचवी अनुसूची अनुसूचित क्षेत्रों एवं आदिवासी क्षेत्रों के प्रशासन से संबंधित है। इन क्षेत्रों में अधिकांश आदिवासी लोग निवास करते हैं। संविधान में यह प्रावधान है कि इन जनजातियों की परम्परा और संस्कृति को बचाये रखने की कोशिश होनी चाहिये। अतः राज्यपाल को यह अधिकार है कि अगर देश का कोई नियम या कानून जनजातीय परम्परा के खिलाफ है तो उसे इन क्षेत्रों में लागू नहीं होने की वह अनुमति दे सकता है।

73वें संविधान में इन क्षेत्रों को ध्यान में नहीं लिया गया था। बाद में भूरिया समिति के प्रतिवेदनों के आधार पर संसद में दिसम्बर 1996 में इन क्षेत्रों में पंचायती राज व्यवस्था लागू करने के लिये विशेष अधिनियम बनाया गया। दिसम्बर 1997 में म.प्र. की विधान सभा ने केन्द्रीय सरकार के प्रावधानों के अनुसार पंचायती राज अधिनियम में संशोधन किया।

मध्यप्रदेश के अधिसूचित क्षेत्रों में ग्राम सभा का गठन

अनुसूचित क्षेत्र के राजस्व ग्राम व वन ग्राम के भीतर भी एक या एक से अधिक ग्राम सभा का गठन किया जा सकता है अर्थात् एक गाँव के छोटे-छोटे पारों या टोलों में भी ग्राम सभा का गठन किया जा सकता है, यदि वे चाहें। ऐसी ग्राम सभा की बैठक का कोरम एक तिहाई सदस्य है, जिसमें एक तिहाई महिलाओं का भी होना अनिवार्य है।

सबसे महत्वपूर्ण प्रावधान यह किया गया है कि पंच, उपसरपंच या सरपंच के अलावा कोई भी अनुसूचित जाति का सामान्य सदस्य जो पदाधिकारी न हो बैठक की अध्यक्षता करेगा।

ग्राम सभा के अधिकार एवं जिम्मेदारियाँ

यद्यपि अधिसूचित क्षेत्र की ग्राम सभा को वे अधिकार तो मिले ही हैं, जो सामान्य क्षेत्रों की ग्राम सभा के पास हैं। किन्तु इन्हें कुछ अन्य भी अधिकार मिले हैं, जो निम्नांकित हैं–

1. जनजातीय समुदाय तथा व्यक्तियों की परम्परा, सांस्कृतिक पहचान तथा सामुदायिक साधनों को सुरक्षित रखने के लिये अधिकार प्राप्त हैं।

2. विवाद निपटाने के परम्परागत रिवाजों के अनुसार फैसला देने का अधिकार।
3. वे अपने क्षेत्र के जल, जंगल तथा जमीन के मालिक हैं तथा अपने प्रचलित रिवाज के अनुसार इनकी व्यवस्था करेंगे।
4. ग्रामसभा अपनी सीमा के भीतर आने वाले सभी बाजारों और सभी प्रकार के पशु मेलों पर नियत्रंण रखेगी।
5. ग्रामसभा में लागू की जाने वाली सभी योजनाओं एवं जनजातीय उपयोजनाओं इत्यादि पर भी ग्रामसभा का ही नियंत्रण रहेगा।
6. आदिवासी क्षेत्रों में ग्रामसभा अपनी बैठक में जो भी निर्णय लेगी उसे लागू करना व करवाना ग्राम पंचायत का काम है। अतः यहां पर सरपंच तथा ग्रामपंचायत पूरी तरह ग्रामसभा के अधीन रहकर काम करते हैं।
7. कोई भी सरकारी विभाग अनुसूचित क्षेत्रों में बिना ग्रामसभा की अनुमति या निर्णय के अपने मन से कोई भी काम नहीं कर सकता।
8. ग्राम सभा विकास की प्राथमिकता के चयन, योजना निर्माण, क्रियान्वयन, लाभार्थियों की चयन एवं रुपये पैसे के खर्चे का प्रमाणन भी करती है।

पंचायती राज व्यवस्था में चुने हुए प्रतिनिधियों को ग्राम पंचायत माना जाने लगा जबकि समस्त गाँव समाज को ही संविधान में ग्राम पंचायत के नाम से स्थापित किया गया था। अनुसूचित क्षेत्रों में सर्वप्रथम निर्मित इस स्वशासी कानून में औपचारिकता का परित्याग करके एक नया रास्ता अपनाया गया है। उसमें ग्राम जैसी किसी औपचारिक इकाई से प्रारम्भ करने के बजाय समुदाय या समाज से शुरूआत किया गया है। नई व्यवस्था में ग्राम के अंतर्गत किसी बसाहत या बसाहत समूह में रहने-बसने वाले लोग शामिल हैं, जो परम्परागत रूप से गाँव समाज के रूप में अपने को मानते हैं।

मध्यप्रदेश में विस्तार अधिनियम के आलोक में अनेक कानूनों के अनुकूलन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। जिन महत्वपूर्ण अधिनियमों में इसके तहत संशोधन किये गए उनमें से प्रमुख हैं – पंचायत राज अधिनियम, आबकारी अधिनियम, भूराजस्व संहिता, खनिज व उत्खनन अधिनियम तथा ग्राम न्यायालय अधिनियम इत्यादि। कुछ अन्य अधिनियमों में भी संशोधन की प्रक्रिया जारी है। इस अधिनियम के द्वारा ग्राम सभा की स्थिति काफी मजबूत हो गयी है। अब इन क्षेत्रों में प्रतिनिधियों के स्थानान्तरणों का महत्व स्थापित किया गया है।

12

मध्यप्रदेश में ग्राम स्वराज – ग्राम गणराज्य की दिशा में एक सार्थक पहल

महात्मा गांधी "ग्राम-स्वराज" की व्यवस्था लागू करने के हिमायती थे। उनके अनुसार भारत को सात लाख ग्राम-गणराज्यों का महासंघ बनाया जाना चाहिए था, जिसमें हर गाँव को गणराज्यों के बराबर अधिकार हों तथा जनता के ये अधिकार वर्तमान प्रावधानों के विपरीत गाँव से जनपद, जनपद से जिले, जिला से प्रदेश में होते हुए केन्द्र तक पहुँचे। सरकार चलाने के अधिकार का उपयोग जनता अभी प्रत्यक्ष रूप से नहीं करती है। गाँव ही वह इकाई है जहाँ जनता अपने इस अधिकार का उपयोग कर सकती है। इसके लिए आवश्यक है कि गाँव इतना शक्तिशाली हो कि अपनी नियति का निर्धारण स्वयं कर सके। गाँव में क्या कार्य होना चाहिये तथा उसको कैसे किया जा सकता है, यह गाँव वाले तय करें। वे इतने आत्मनिर्भर हो जायें कि अपनी आवश्यकता की समस्त वस्तुऐं गाँव में ही तैयार कर लें। स्वतन्त्रता के पचास वर्ष व्यतीत हो जाने के बावजूद गांधीजी का यह सपना सपना ही बना हुआ है। इसी दिशा में प्रयास करने के लिए पंचायती राज व्यवस्था द्वारा ग्राम पंचायत स्तर तक अधिकारों के विकेन्द्रीकरण एवं सत्ता प्रत्यायोजन के अनेक प्रयास किए गए। 73वें संविधान संशोधन का प्रावधान तथा उसके आधार पर मध्यप्रदेश में भी पंचायती राज अधिनियम 1993 लाया गया। किन्तु इन सब के बादजूद जनता के इन अधिकारों का उपभोग चंद प्रभावशाली एवं मजबूत लोगों द्वारा किया जाता रहा। अतः सत्ता कुछ ही लोगों के हाथों में सीमित न रह जाय तथा उसमें कमजोर एवं वंचित वर्गों जैसे महिलाओं, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों की भी सहभागिता रहे, इसके लिए मध्यप्रदेश में 26 जनवरी 2001 से ग्रामस्वराज की व्यवस्था लागू की गई। इसके लिए मध्यप्रदेश पंचायतीराज एवं ग्रामस्वराज अधिनियम 2001 लाया गया है।

ग्रामस्वराज अधिनियम क्यों ?

मध्यप्रदेश में राजनीति के स्थान पर लोकनीति अथवा चुने हुए लोगों के स्थान पर चुनने वालों का राज स्थापित करने के पूज्य बापू के सपनों को

साकार करने हेतु इस अधिनियम को लाया गया है। उपरोक्त उद्देश्यों को लागू करने में सबसे प्रमुख कठिनाई यह थी कि अभी तक या तो ग्राम सभा की बैठकें होती ही नहीं थीं या जहाँ होती भी थीं, वहाँ प्रभावी नहीं थीं। अतः ग्रामसभा अपने दायित्वों का निर्वहन भी नहीं कर पाती थीं। ग्रामसभा की भूमिका प्रभावी के अनेक कारण थे, जैसे –

1. ग्रामसभा का गठन ग्राम पंचायत स्तर पर किया जाता था। एक ग्राम पंचायत में कई ग्राम होते थे, वे प्रायः इतने दूर-दूर अवस्थित होते थे कि समस्त गाँवों के लोगों का एक स्थान पर एकत्रित होना कठिन हो जाता था। दूसरे उनकी संख्या इतनी अधिक थी कि बैठक सार्थक बनाना एक दुष्कर कार्य था।
2. ग्राम सभा की बैठकें प्रायः दिन में होती थीं अतः व्यक्ति अपनी एक दिन की मजदूरी या अन्य आवश्यक कार्य को छोड़कर इन बैठकों में जाना आवश्यक नहीं समझते थे। अभी तक ग्राम सभा की बैठक का तारीख समय, एजेण्डा दूसरे लोग तय करते थे।
3. ग्राम सभा यदि कोई निर्णय ले भी ले तो उसे लागू करने व निगरानी करने की शक्ति ग्राम सभा के पास नहीं थी अतः ग्राम सभा की बैठकों को व्यर्थ का बकवास करने वाली संस्था माना जाता था जिससे कि लोग उसमें जाने से बचने लगे।
4. ग्राम सभा की अनेक स्थानों पर बैठकें कागज में ही हो जाती थीं तथा यदि बैठकें न भी हों तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता था।
5. ग्राम सभा की बैठकों में दबंगों के द्वारा प्रायः मार-पीट किया जाता था, जिसके भय से इन बैठकों में लोग आना बंद कर दिए।
6. ग्राम सभा की बैठकों में जो आते थे उन्हें न तो कोई लाभ होता था और न ही न आने वालों को कोई हानि होती थी, इससे भी लोगों का इसके प्रति आसक्ति क्षीण होती चली गयी।
7. ग्राम सभा में अभी तक महत्वपूर्ण बातें तय ही नहीं होती थीं, जो कुछ थोड़ा बहुत फैसले हो भी जाते थे उनका क्रियान्वयन ग्राम पंचायत के द्वारा किया ही नहीं जाता था।
8. आम जनता को उनके अधिकारों का ज्ञान नहीं था और न ही प्रशासन की मंशा उन्हें जागरूक करने की थी।

उपरोक्त कमियों को दूर करके ग्राम सभा को अधिक सक्रिय करने के लिए मध्यप्रदेश में ग्रामस्वराज व्यवस्था लागू की गयी है।

ग्रामस्वराज अधिनियम के प्रमुख प्रावधान

मध्यप्रदेश शासन द्वारा लागू की गई नई ग्रामस्वराज व्यवस्था में सत्ता केवल नाममात्र को नहीं अपितु सच्चे अर्थों में आम जनता तक पहुँचाने के लिए प्रयास किया गया है। इसमें गाँव से सबंधित समस्त निर्णय गाँव वाले स्वयं लेंगे तथा गाँव विकास संबंधित योजनाओं के निर्माण, क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन वही करेंगे। इसके तहत गाँव में प्रत्यक्ष लोकतंत्र की स्थापना करके ग्राम गणराज्य की व्यवस्था लागू की गई है, जिसमें सत्ता व अधिकार के बदले बातचीत, आमराय व सहमति के आधार पर हुए समझौते के द्वारा समस्त निर्णय लिए जायेंगे। इसके तहत संसाधनों को भी एकत्रित करने का दायित्व भी ग्रामवासियों का ही है। ग्रामस्वराज के द्वारा गाँव राजनैतिक इकाई की जगह एक सामुदायिक इकाई के रूप में फिर से स्थापित करने की कोशिश की जा रही है। ग्रामस्वराज के प्रमुख प्रावधानों का संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

(अ) ग्रामसभा

(1) ग्रामसभा का स्वरूप

इस संशोधित अधिनियम के अनुसार अब एक पंचायत के अंदर आने वाले प्रत्येक राजस्व एवं वन ग्राम के लिए अब पृथक-पृथक ग्रामसभायें गठित की जा सकती हैं। उदाहरण के लिए यदि किसी ग्राम पंचायत में एक वन ग्राम तथा दो राजस्व ग्राम आते हों तो उस ग्राम पंचायत में तीन ग्रामसभायें गठित की जा सकती हैं तथा तीनों ग्रामसभाओं की अलग-अलग बैठकें होंगी। इस प्रकार के किसी भी ग्राम के वे समस्त मतदाता ग्रामसभा के सदस्य होते हैं, जिनका ना निर्वाचक नामाली में सम्मिलित होता है।

(2) ग्रामसभा की बैठकें

इस अधिनियम के अनुसार निर्मित की गई किसी भी ग्रामसभा की प्रथम बैठक सरपंच के द्वारा बुलायी जाती है। इसके पश्चात् की बैठकों को बुलाने का समय, स्थान एवं तारीख ग्रामसभा की इसी बैठक में तय कर लिया जाता है। बैठक की लिखित सूचना निर्धारित तिथि से कम से कम एक सप्ताह पूर्व गाँव के सार्वजनिक स्थलों पर चिपकाई जानी चाहिये। साथ ही मुनादी भी करायी जानी होगी।

ग्राम सभा की प्रतिमाह एक बैठक अनिवार्य है। इसके अलावा ग्रामसभा के कुल सदस्यों का दस प्रतिशत या पचास सदस्यों द्वारा जो भी कम हो, के द्वारा, लिखित रूप में सचिव को आवेदन करने पर सचिव सात दिन के अंदर ग्राम सभा की अतिरिक्त बैठक बुलायेगा। ग्रामसभा की बैठक में भाग लिए हुए सभी लोग कार्यवाही रजिस्टर में हस्ताक्षर करेंगे। ग्राम पंचायत का सचिव अब ग्रामसभा का भी सचिव होगा तथा बैठकों को बुलाने की जिम्मेदारी सचिव की ही होगी। जब भी सचिव को लेकर कोई विवाद होगा तो पंचायत की सभी ग्रामसभाओं की बैठक में वह विवाद तय होगा।

(3) कोरम-गणपूर्ति

ग्रामसभा की कोई भी बैठक ग्रामसभा के समस्त सदस्यों में से कम से कम 20 प्रतिशत की उपस्थिति के बगैर नहीं होगी। उपस्थिति सदस्यों में एक तिहाई महिलाओं का होना भी आवश्यक है। किसी भी बैठक में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के सदस्यों का भी उस गाँव की जनसंख्या में उनका जो अनुपात हो, उतनी संख्या में होना आवश्यक है। जो गाँव बहुत बड़े हैं तथा जहाँ मतदाताओं की संख्या पाँच हजार से ज्यादा है, वहाँ पर एक हजार ही कोरम माना जायेगा। अतः निम्नांकित परिस्थितियों में ग्राम सभा की बैठक स्थगित हो जायेगी।

1. यदि ग्रामसभा की कुल सदस्य संख्या का पाँचवा भाग यदि 20 प्रतिशत सदस्य उपस्थित न हों।
2. कम से कम उपस्थित सदस्यों में से तीसरा हिस्सा यानि 33 प्रतिशत महिलायें एवं अनु. जाति एवं जनजाति के लोग अपनी जनसंख्या के अनुपात में उपस्थित न हों।

यदि किसी बैठक का उपरोक्त कारणों से स्थगित कर दिया जाता है तो ऐसी स्थगित बैठक आधे घण्टे बाद दुबारा बुलाई जा सकती है। इस स्थगित बैठक के लिए भी कोरम आवश्यक बना दिया गया है। पूर्व में बिना कोरम के भी बैठकें हो जाती थीं यदि बैठक कोरम के अभाव में स्थगित हुई हो तो।

(4) अध्यक्षता

ग्राम सभा की बैठकों की अध्यक्षता सरपंच के द्वारा किया जायेगा। यदि किसी कारणवश सरपंच उपस्थिति न हो तो उपसरपंच तथा उपसरपंच के भी अनुपस्थिति में ग्राम पंचायत के पंचों में से ही किसी पंच को ग्रामसभा के द्वारा अध्यक्ष चुन लिया जायेगा।

(5) ग्रामसभाओं की संयुक्त बैठक

यद्यपि एक पंचायत में कई ग्राम सभायें हों तो सभी ग्राम सभायें अपने-अपने गाँव के संबंध में किसी भी प्रकार का निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र हैं। फिर भी कभी-कभी ऐसे विषय उपस्थित हो जाते हैं जो दो या दो से अधिक ग्राम सभाओं को प्रभावित करते हैं, जैसे अनेक ऐसी संस्थाऐं एवं कर्मचारी हैं जो एक से अधिक ग्रामों में कार्यरत हैं। इस प्रकार के किसी विवाद पर जिसमें दो या दो अधिक ग्रामसभाऐं प्रभावित हो रही हों, के विवाद के समाधान के लिए पंचायत के भीतर आने वाली ऐसी ग्रामसभाओं की संयुक्त बैठक बुलाई जा सकती है। ग्राम सभा की संयुक्त बैठक में लिया गया कोई भी निर्णय सभी ग्रामसभाओं के लिए बाध्यकारी होंगे।

(6) निर्णय प्रक्रिया

इस अधिनियम के अनुसार यथासम्भव ग्रामसभा की बैठकों में यह प्रयास किया जायेगा कि निर्णय सर्वसम्मति से लिए जायें। यदि सर्वसम्मति नहीं बन पाती है तो आमराय से फैसले की कोशिश की जानी चाहिए। इस प्रकार ग्रामसभा की बैठक में लिया गया निर्णय निर्णायक होता है, आम राय का तात्पर्य है, जहाँ कहीं भी विरोध हो उसको पारस्परिक विचार-विमर्श के माध्यम से दूर किया जाना, जिससे किसी निर्णय पर पहुँचा जा सके। आमराय स्थापित करने के उद्देश्य से बैठकों को दो बार तक स्थगित किया जा सकता है। तीसरी बार भी यदि एकमत या आमराय नहीं बन पाये तो इस बैठक में गुप्त मतदान करवाकर सामान्य बहुमत के आधार पर निर्णय लिया जायेगा। यदि गुप्त मतदान में भी मत बराबर आये तो अध्यक्ष का मत निर्णायक होगा। इस अधिनियम का मूल उद्देश्य है गाँव में पारस्परिक सहयोग, मेलजोल एवं आपसी सद्भाव बना रहे। अतः प्रयास यही होना चाहिये सभी निर्णय सर्वसम्मति या आमराय से होना चाहिये।

(7) ग्रामसभा के निर्णयों के विरुद्ध अपील

पंचायती राज एवं ग्राम स्वराज अधिनियम में ग्रामसभा द्वारा लिए गए निर्णयों के विरुद्ध अपील का प्रावधान भी है। इसके लिए जनपद स्तर की एक समिति बनाने की व्यवस्था की गयी है जिसमें निम्नांकित सदस्य होंगे।

1. जनपद अध्यक्ष,
2. ग्रामसभा क्षेत्र का जनपद पंचायत का सदस्य,
3. उपखण्ड अधिकारी राजस्व।

जनपद अध्यक्ष इस अपील समिति का अध्यक्ष होता है। ग्रामसभा के द्वारा लिए गए किसी निर्णय से ग्रामसभा का कोई भी सदस्य सहमत नहीं है तो, उस निर्णय के विरुद्ध उपरोक्त समिति में अपील कर सकता है। ग्रामसभा के किसी भी निर्णय के तीस दिन के अंदर ही अपील किया जा सकता है। यदि अपील तीस दिन के बाद की जा रही है तथा अपीलकर्ता देरी के लिए पर्याप्त कारण बताकर अपील समिति को संतुष्ट कर देता है तो समय बीत जाने के बावजूद अपील स्वीकृत की जा सकती है। जिस फैसले के विरुद्ध अपील की जा रही है, उसकी प्रतिलिपि भी प्रस्तुत करना आवश्यक है। अपील समिति तथ्यों एवं दस्तावेजों का अध्ययन करके तथा संबंधित पक्षों को सुनवाई का अवसर प्रदान करके ही अपना निर्णय देगी। अपील समिति का निर्णय अंतिम एवं सर्वमान्य होगा। अपील समिति अधिनियम एवं नियम के प्रावधानों के तहत ही जाँच करेगी। ग्रामसभा द्वारा लिए गए निर्णय की पुष्टि या निरस्त करने का अधिकार अपील समिति के पास दिया गया है।

(ब) ग्रामसभा की समितियाँ

आज का गाँव कई टुकड़ों में बँटा है। गाँव में ऐसे समूह हैं जो अपने हित की बात ठीक ढंग से सबके सामने नहीं रख पाते। आरक्षण एवं बढ़ती शिक्षा के बावजूद महिलाओं, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा पिछड़े वर्ग के लोगों की फैसले लेने में भागीदारी कम है। क्योंकि अभी तक ग्रामसभा अपने फैसलों एवं सुझावों को लागू करवाने के लिए सिर्फ पंचायतों पर निर्भर थी। अब इस व्यवस्था में ग्रामस्वराज अधिनियम के माध्यम से बदलाव लाया गया है। अब ग्राम सभा अपने समितियों के माध्यन से काम करेगी। गाँव के काम-काज को चलाने व फैसले लेने के लिए संबंधित वर्गों के लोगों की समितियों के निर्माण का प्रावधान है। ग्राम स्वराज व्यवस्था में ग्रामसभा को बहुत से काम करने हैं। ग्राम सभा में गाँव के सभी मतदाता सदस्य होते हैं अतः सबकी सहभागिता के लिए आपस में कामों का बंटवारा करके अलग-अलग कामों को भिन्न-भिन्न लोगों की समितियों को सौंप दिया जायेगा। अधिनियम में तीन प्रकार की समितियों के गठन का प्रावधान किया गया है–

(क) स्थायी समितियाँ,

(ख) अस्थायी समितियाँ,

(ग) पहले से गठित समितियाँ।

(क) स्थायी समितियाँ

गाँवों के विकास के लिए कुछ ऐसी गतिविधियां जो निरंतर चलती रहती हैं, उनको संपादित करने के लिए आठ स्थायी समितियों को गठित करने का प्रावधान है। इन समितियों में हितग्राही या स्टाक होल्डर्स सदस्य होंगे। ग्राम विकास समिति को छोड़कर शेष सात समितियों के लिए ग्राम सभा यह तय करेगी कि किसी समिति में कितने सदस्य होंगे। किन्तु किसी भी समिति में अधिकमत 12 सदस्य हो सकते हैं। समिति के सदस्यों का चुनाव ग्राम सभा विशेष बैठक में करेगी। इन समितियों के बनने के एक माह के अंदर उनमें से एक सभापति चुना जायेगा। इन समितियों का कार्यकाल 5 वर्ष का होगा, तथा सभापति अपने पद पर एक वर्ष तक बना रहेगा। स्थायी समितियों का कोई भी सदस्य समिति के सभापति को त्यागपत्र देकर पद छोड़ सकता है तथा ग्राम सभा किसी भी सदस्य को लिखित कारण बताकर हटा सकती है। इस प्रकार रिक्त हुए पद एक माह के अंदर पुनः भर लिए जायेंगे। खाली पद उसी वर्ग से भरा जायेगा जिस वर्ग का पद पूर्व में था। प्रमुख स्थायी समितियों के संबंध में संक्षिप्त विवरण अग्रांकित है –

(1) ग्राम विकास समिति

ग्राम विकास समिति शेष अन्य सातों समितियों का प्रतिनिधित्व करने वाली समिति है। यह अन्य समितियों से इस मायने में अलग है कि इसमें शेष सात समितियों के सभापति सदस्य होते हैं। इन सात सभापतियों के अलावा इसके सदस्य सरपंच एवं उपसरपंच भी होते हैं। सरपंच इस समिति का सभापति तथा उपसरपंच उपसभापति होता है। सभापति का कार्यकाल भी सरपंच पद के अनुरूप पाँच वर्ष रखा गया है। इस समिति के द्वारा योजना बनाना, राजस्व, कराधान, लेखा, बजट, ग्रामकोष तथा अन्य वित्तीय मामलों पर विचार-विमर्श का कार्य किया जाता है। इसके अतिरिक्त ऐसे विषय जो किसी अन्य समिति के क्षेत्राधिकार में नहीं आते हैं, वे भी इस समिति अधिकार क्षेत्र में समझे जायेंगे। इस प्रकार ग्राम विकास समिति सर्वाधिक प्रमुख समिति है। ग्राम पंचायत का सचिव ही इस समिति का भी सचिव होता है।

(2) सार्वजनिक संपदा समिति

इस समिति के अधिकार क्षेत्र में भूमि, वन, जलसंसाधन, पर्यावरण इत्यादि से संबंधित विषय रखे गए हैं।

(3) कृषि समिति

यह समिति खेती से संबंधित समस्याओं एवं कृषि विकास तथा पशुधन से जुड़े हुए कार्यों के लिए उत्तरदायी है। इस समिति के अन्तर्गत कृषि, पशुपालन, मत्स्यपालन, मृदा संरक्षण, भूमिसुधार, सहकारिता, जलसंवर्धन, सिंचाई, प्राकृतिक आपदा, राहत, कंटूर बंडिंग, खाद एवं बीज वितरण तथा अन्य कृषि विकास से संबंधित कर्तव्यों के सम्पादन का दायित्व है।

(4) स्वास्थ्य समिति

यह समिति लोक स्वास्थ्य संर्वधन से संबंधित कार्यों हेतु गठित की गई है। इस समिति के अन्तर्गत टीकाकरण, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, अस्पतालों एवं औषधालयों का पर्यवेक्षण, जल प्रदाय एवं जल निकास, परिवार कल्याण एवं अन्य रोगों के रोकथाम से संबधित कार्य आते हैं।

(5) शिक्षा समिति

ग्रामों विकास के लिए शिक्षा सबसे आवश्यक माना गया है। शिक्षा के विकास एवं साक्षरता के संवर्धन हेतु शिक्षा समिति कार्य करती है। शिक्षा समिति के द्वारा औपचारिक शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा, खेलकूद, प्राथमिक शिक्षा, पढ़ता-बढ़ता समूह, बालबाड़ी एवं आंगनबाड़ी जैसे कार्य सम्मिलित किए गए हैं।

(6) अधोसंरचना समिति

गाँव के लोगों को अधिकतम सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए आवश्यक अधो संरचना एवं निर्माण कार्य से संबंधित विषय इस समिति के अन्तर्गत समाहित किए गए हैं। इस समिति के क्षेत्राधिकार में गाँव की सड़कें, यातायात एवं संचार के साधन, ग्रामीण आवास, सार्वजनिक भवन तथा ऊर्जा से जुड़े हुए कार्यों को समाहित किया गया है।

(7) सामाजिक न्याय समिति

गाँव में ऐसे वर्ग के लोग जो कि दलित, दमित एवं शोषित हैं, के कल्याण के लिए कार्य करने हेतु इस समिति का गठन किया गया है। इस समिति के द्वारा छुआछूत हटाना, अनुसूचित जाति, आदिवासी तथा पिछड़े वर्ग के हित से संबंधित कार्य करना, दहेज जैसी सामाजिक बुराई को दूर करना, शारीरिक रूप से अक्षम बूढ़ों एवं निराश्रित लोगों के कल्याण से संबंधित कार्य करना, महिला तथा बाल कल्याण के लिए प्रयास करना, गरीबी रेखा से नीचे

जीवनयापन करने वाले लोगों के कल्याण से संपादित कार्य करना इत्यादि कार्य संपादित किए जाने का प्रावधान है।

(8) ग्राम सुरक्षा समिति

पूरे गांव की सुरक्षा से संबंधित समस्त कार्य इस समिति के क्षेत्र में आते हैं। इस समिति को गाँव के लोगों की जीवन की रक्षा से जुड़े हुए सभी काम, उनकी सम्पत्ति की रक्षा से जुड़े हुए सभी काम, आकस्मिक प्राकृति आपदाओं, जैसे बाढ़, सूखा, भूकंप इत्यादि के प्रकोप की स्थिति में समस्त ग्राम के लोगों को राहत पहुँचाने से संबंधित दायित्वों का निवर्हन करना पड़ता है।

समितियों के आरक्षण के प्रावधान

स्थायी समितियों में कुल सदस्य संख्या के आधे स्थान अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षित होगे। इन आरक्षित आधे पदों में से दो तिहाई सदस्य अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के लिए होंगे तथा एक तिहाई पद अन्य पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षित होंगे। समिति में एक तिहाई महिलाओं का होना जरूरी है। महिलाएं आरक्षित अथवा अनारक्षित किसी भी वर्ग की हो सकती हैं। पंच को छोड़कर ग्राम सभा का कोई भी सदस्य एक से अधिक समितियों का सदस्य नहीं हो सकता है। ग्राम पंचायत के पंच ग्राम विकास समिति को छोड़कर शेष दो समितियों के सदस्य हो सकते हैं। सभी समितियों के सभापति का पद भी निम्नांकित चक्रानुक्रम में एक-एक वर्ष के लिए आरक्षित होगा–

1. अनुसूचित जाति,
2. अनुसूचित जनजाति,
3. अन्य पिछड़ा वर्ग,
4. महिला,
5. सामान्य (अनारक्षित)।

पहलीबार सभापति किस वर्ग से होना चाहिए इसके लिए लाटरी निकाली जाएगी। इसके बाद चक्रानुक्रम में बाकी बचे हुए वर्गों को सभापति का पद मिलेगा। चूँकि सभापति का चुनाव हर वर्ष किया जाना है अतः यह प्रक्रिया हर वर्ष की जाएगी।

सभापति अथवा किसी सदस्य को ग्रामसभा किसी भी गलत कार्य के लिए कारण बताओ नोटिस जारी करके पद से हटा सकती है अथवा वे स्वयं

त्याग पत्र देकर हट सकते हैं। किंतु उनके स्थान पर आया हुआ सभापति या सदस्य जिसे एक माह के भीतर भरा जाना आवश्यक है, उसी वर्ग का होना चाहिए जिस वर्ग का व्यक्ति पूर्व में था।

(ख) अस्थायी समिति

इसके अन्तर्गत स्थायी समितियों के अतिरिक्त ग्राम सभा आवश्यकतानुसार अस्थायी समितियों का गठन भी कर सकती हैं। अस्थायी समितियों में भी निर्धारित सदस्य सम्मिलित किए जाते हैं। इन समितियों को ऐसे कार्य करने का दायित्व सौंपा जाता है जो एक निश्चित अवधि अथवा कम समय में समाप्त हो जाना हो। अस्थायी समिति प्रायः ऐसे उद्देश्यों के पूर्ति लिए बनायी जाती है, जिससे किसी तत्कालिक समस्या का समाधान करना आवश्यक होता है। उदाहरण के लिए यदि किसी गाँव में कोई उत्सव सार्वजनिक रूप से आयोजित किया जाना है तो उस उत्सव के आयोजन के लिए अस्थायी समिति का गठन किया जा सकता है। इस प्रकार अस्थायी समितियाँ कम समय की होती हैं तथा काम पूरा हो जाने एवं ग्राम सभा के संतुष्ट हो जाने पर ये समितियां भंग हो जाती हैं।

ग्राम सभा कभी भी अस्थायी समितियां बना सकती हैं एवं खत्म भी कर सकती हैं। अस्थायी समितियों में कितने सदस्य होंगे यह ग्राम सभा के द्वारा तय किया जाता है। इन समितियों के गठन, काम करने का तरीका एवं इनसे संबंधित अन्य विषयों का निर्धारण भी ग्राम सभा द्वारा किया जाता है। अस्थायी समिति के सदस्य अपने में से ही एक सभापति एवं एक सचिव चयनित कर लेते हैं। सभापति की आज्ञा से सचिव समिति की बैठक बुलाता है तथा समितियों के कार्यों का विवरण तैयार करता है। समितियों में भी निर्णय सर्वसम्मति से लिए जाते हैं किंतु यदि सर्वसम्मति एवं आमराय से निर्णय न लिए जाए तो बहुमत से निर्णय लेने का प्रयास किया जाता है।

समितियों के कार्य

सभी समितियां अपने निर्धारित दायित्वों की पूर्ति के लिए संबंधित कार्यों के लिए आवश्यक कागज पत्र तथा दस्तावेजों को सरकारी विभागों एवं ग्रामपंचायतों से उसी तरह मंगा सकती हैं जिस तरह ग्राम सभा को अधिकार है। समितियां अधिनियम के अन्तर्गत उनके लिए निर्धारित कार्यक्षेत्र में आने वाली स्कीमों एवं कार्यक्रमों तथा ग्रामसभा या राज्य सरकार द्वारा दिए गए कामों को करेंगी। इसके अलावा अपने द्वारा सम्पादित कार्यों का प्रतिवेदन

तैयार करके ग्रामसभा में समय-समय पर प्रस्तुत करेंगी। समितियों द्वारा किए गए कार्यों एवं फैसलों पर ग्राम सभा विचार विमर्श करके उचित निर्णय लेंगी। ग्रामसभा यदि आवश्यक समझे तो समितियों द्वारा लिए गए निर्णयों को परिवर्तित कर सकती हैं।

(ग) पहले से गठित समितियां

राज्य सरकार अथवा जिला प्रशासन इत्यादि के द्वारा आवश्यकतानुसार पूर्व में अनेक समितियों का गठन किया गया है जो कि वर्तमान समय में भी बनी हुई हैं ; जैसे –

1. ग्राम शिक्षा समिति,
2. ग्राम जलग्रहण समिति,
3. वन सुरक्षा समिति इत्यादि।

इनमें से अनेक समितियां नई समितियां बनने की वजह से स्वतः समापन हो जायेंगी। जैसे -- ग्राम शिक्षा समिति। किंतु यदि ग्राम सभा सहमत हो तो जलग्रहण समिति एवं वन सुरक्षा समिति जैसी समितियां आगे भी कार्य कर सकती हैं। इस प्रकार पूर्व में गठित समस्त समितियों का अस्तित्व ग्राम सभा की मर्जी पर निर्भर करता है।

ग्रामसभा के अधिकार एवं कर्तव्य

ग्राम स्वराज अधिनियम में ग्रामसभा के शक्ति एवं उसकी जिम्मेदारियों को स्पष्ट किया गया है। जहां एक ओर ग्राम सभा को वास्तविक अधिकार देकर शक्तिशाली बनाया गया है वहीं इसे गांव का समग्र विकास करने का दायित्व भी सौंपा गया है। ग्रामसभा को जो समस्त जिम्मेदारियां दी गई हैं उन्हें निम्नांकित पांच भागों में वर्गीकृत किया गया है--

1. गाँव की जिम्मेदारी एवं व्यवस्था से संबंधित कार्य ।
2. ग्राम पंचायत द्वारा किये जाने वाले कार्यों से संबंधित दायित्व।
3. प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण करने संबंधी कार्य।
4. संस्थाओं तथा उसके कर्मचारियों का नियंत्रण संबंधी कार्य।
5. ग्रामसभा के अन्य कार्य।

(1) गाँव के जिम्मेदारी एवं व्यवस्था से संबंधित कार्य

ग्राम सभा को यह अधिकार दिया गया है कि वह अपने गांव के आर्थिक विकास, गरीबी उन्मूलन तथा हितग्राही मूलक समस्त योजनाओं व स्कीमों की जानकारी प्राप्त कर उनके क्रियान्वयन के लिए सिद्धान्त बनाए। इस प्रकार

के समस्त कार्यक्रमों के नियत्रंण एवं मानीटरींग करने का कार्य ग्राम सभा को दिया गया है। इसके तहत ग्राम सभा की जिम्मेदारी है कि गांव में जितने भी काम चल रहे हैं उनके उचित क्रियान्वयन के साथ-साथ वह इस बात पर भी ध्यान दे कि इन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन से प्राप्त लाभ सामाजिक न्याय के सिद्धान्तों पर आधारित हो।

(2) ग्राम पंचायत के द्वारा किए गए जाने वाले कार्यों से संबंधित दायित्व

ग्रामसभा का यह भी दायित्व है कि पंचायत द्वारा चलायी जा रही सभी योजनाओं, वार्षिक योजनाओं, कार्यक्रम तथा परियोजनाओं के क्रियान्वयन से पहले उनका अनुमोदन करे। ग्रामसभा ग्रामपंचायत के वार्षिक बजट एवं आर्डर रिपोर्ट पर भी विचार करती है। इसके अलावा ग्राम पंचायत ने विगत वर्ष में जिन प्रशासनिक कार्यों का सम्पादन किया है उससे संबंधित प्रतिवेदन पर भी ग्राम सभा द्वारा विचार किया जाता है।

(3) प्राकृतिक संसाधनों पर निमंत्रण करने संबंधी कार्य

ग्रामसभा को यह अधिकार दिया गया है कि वह अपने क्षेत्र के भीतर आने वाले प्राकृतिक संसाधन, जैसे – जल, जंगल एवं जमीन का प्रबंध करे। इसके लिए निम्नांकित दो प्रकार के प्रमुख कार्यों का उल्लेख किया गया।

(अ) राजस्व संबंधी, (ब) वन विभाग संबंधी।

(अ) राजस्व संबंधी

राजस्व के संबंध में निम्नांकित कृत्यों के निर्वहन का दायित्व सौंपा गया है–

1. अविवादित नामंत्रण करना।
2. कोटवार की नियुक्ति करना।
3. तालाबों का पर नियंत्रण जिनका पूरा क्षेत्र गांव की सीमा में आता है।
4. जमीन संबंधी दस्तावेज रखना व उन्हें देखने के लिए उपलब्ध कराना।
5. भू-अधिकार एवं ऋण पुस्तिका का आवेदन अब पहले ग्राम सभा को दिए गए।

(ब) वन विभाग संबंधी

गाँवों में वन विभाग द्वारा गठित समितियों पर ग्राम सभा का नियंत्रण

होता है। इसके लिए ग्रामसभा अपने क्षेत्र के वनों का संरक्षण करेगी। वनों से संबंधित किसी भी प्रकार की वन सामग्री लेने से पूर्व वन विभाग ग्राम सभा से सलाह ले। ग्रामसभा अपने क्षेत्र से निकलने वाली वनोपज सामग्रियों की जांच भी कर सकती है। ग्रामसभा / जनपद भी सभी ग्राम सभाएं / जिले की सभी ग्रामसभाएं मिलकर ऐसे वनोपज खरीदकर न्यूनतम मूल्य तय करेंगी जिनका राष्ट्रीकरण नहीं हुआ हो।

(4) संस्थाओं तथा उसके कर्मचारियों को नियंत्रण संबंधी कार्य

ग्रामसभा उन सभी सरकारी विभागों के कर्मचारियों पर पंचायत के माध्यम से नियंत्रण करेगी जो विभाग ग्राम पंचायत को दिए गये हैं। अब ग्राम सभा अपने क्षेत्र में काम करने वाले सरकारी कर्मचारियों के वेतन रोकने, छुट्‌टी स्वीकार करने और उनके कार्य की समीक्षा करने के लिए इस अधिनियम के द्वारा प्राधिकृत कर दी गई है।

(5) ग्राम सभा के अन्य कार्य

(अ) सामाजिक जिम्मेदारी संबंधी कार्य–

ग्रामसभा को 45 ऐसी नयी जिम्मेदारी दी गई हैं जिनका संबंध सामाजिक सरोकार से है। इनका संक्षिप्त विवरण अंग्राकिंत है –

1. जनसाधारण में जागरूकता बढ़ाना।
2. युवा कल्याण, परिवार कल्याण तथा खेलकूद को बढ़ावा देना।
3. आग की रोकथाम व आग लगने पर सम्पत्ति की सुरक्षा के उपाय करना।
4. निर्धन व्यक्ति तथा उसके परिवार के सदस्य के अंतिम संस्कार में मदद करना।
5. सामुदायिक कार्य के लिए स्वैच्छिक श्रम एवं सहायता के विचार आगे बढ़ावा तथा व्यवस्था करना।
6. सामुदायिक स्वामित्व की धारणा को बढ़ाना।
7. काजी हाउस की स्थापना करना।
8. चिकित्सीय सहायता उपलब्ध कराना।
9. गरीब आदमी के फायदे के लिए योजना बनाना व इस संबंध में राज्य सरकार द्वारा सौपें गए कार्य करना।

(ब) सहयोग से संबंधित दायित्व

निम्नांकित परिस्थितियों में ग्राम-सभा को सहयोग प्रदान करने का दायित्व निर्वहन करना पड़ता है–

1. जनगणना कार्य में सहयोग करना।
2. बीमारी, महामारी की रोकथाम में सहयोग करना।
3. टीकाकरण में सहयोग प्रदान करना।
4. मनुष्यों तथा पशुओं के सुरक्षा के उपाय करना।
5. निःशक्त और निराश्रित के सहायता एवं इनके लिए सौंपे गये कार्य को सम्पादित करना।

(स) साफ सफाई की जिम्मेदारी

1. स्वच्छता सफाई तथा गंदगी दूर करना।
2. पानी की आपूर्ति बनाए रखना।
3. पशु आदि के अंतिम संस्कार की व्यवस्था करना।
4. लावारिस लाशों को ठिकाने लगाना।,
5. कचरा इकट्ठा करने की जगह सुनिश्चित करना।
6. मांस की बिक्री की देखरेख तथा नियंत्रण करना।
7. सार्वजनिक कुओं, तालाबों का निर्माण एवं मरम्मत कार्य।
8. नहाने-धोने तथा पशुओं के पीने के पानी की जगह का निर्माण करना।
9. संडास, नाली आदि का निर्माण एवं देख-रेख करना।
10. मूत्रालय, शौचालय आदि की देख-रेख एवं निर्माण करना।

(द) बुनियादी सुविधाओं की जिम्मेदारी

1. सार्वजनिक स्थानों पर प्रकाश व्यवस्था करना।
2. गाँव के रास्तों का निर्माण।
3. ग्रामीण सड़क, पुलिया, पुल बांध आदि का निर्माण एवं उनकी सुरक्षा।
4. जीवन तथा सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए कार्य करना।
5. बुनियादी सुविधाओं की योजना बनाना एवं प्रबंध करना।

(य) अन्य जिम्मेदारी

1. गाँव के भीतर आने वाले तालाबों एवं दूसरे जल निकायों की देख-रेख करना।
2. मछली पकड़ने एवं दूसरे वाणिज्यिक एवं छोटे तालाबों के उपयोग को नियंत्रित करना।
3. विभिन्न सरकारी कार्यक्रमों के लिए हितग्राही चयन करना।
4. ग्रामसभा के भीतर लागू होने वाले विकास की स्कीमों एवं निर्माण के कार्यों को लागू करना और उस पर नजर रखना।

ग्रामस्वराज में वित्त व्यवस्था

ग्रामसभा के आय के मुख्य स्रोत

इस व्यवस्था में ग्राम सभा को वित्तीय रूप से मजबूत एवं आत्मनिर्भर बनाने की कोशिश की गई है। ग्रामस्वराज अधिनियम के अनुसार ग्राम सभा की समस्त आय ग्राम कोष में जमा की जायेगी। इसकी आय के प्रमुख स्रोत निम्नांकित हैं–

1. दान से प्राप्त धन।
2. ग्राम पंचायत निधि से प्राप्त धन।
3. ग्राम सभा द्वारा लगाये गये करों से आय।
4. जिला पंचायत निधि से या त्रिस्तरीय पंचायतों की निधि से मिलने वाली राशि जिस में भूराजस्व, गौण खनिज पर प्राप्त रायल्टी, पट्टे से मिलने वाली राशि, चराई फीस, शालभवन उपस्कर इत्यादि शामिल है।
5. ग्राम सभा की अन्य गतिविधियों से होने वाली आय।
6. केन्द्र सरकार व प्रदेश सरकार द्वारा स्कीमों पर दिया जाने वाला धन भी सम्मिलित है।

ग्राम सभा द्वारा लगाये जाने वाले कर

म0 प्र0 में अब ग्राम सभा इस अधिनियम के अनुसार गाँव की सीमा के अंदर रहने वाले निवासियों पर विभिन्न प्रकार के कर लगायेगी। ये मुख्य रूप से दो प्रकार के होंगे।

1. अनिवार्य या जरूरी कर,
2. वैकल्पिक कर।

(1) अनिवार्य कर

ऐसी जमीन और भवन जो केन्द्र सरकार, राज्य सरकार, ग्राम पंचायत, जनपद पंचायत, जिला पंचायत, धार्मिक शिक्षा हेतु निर्मित छात्रावास या बोर्डिग हाउस इत्यादि को छोड़कर किसी भी ऐसे जमीन या भवन जिसकी कीमत छः हजार से ज्यादा हो ग्राम सभा टैक्स लगा सकती है। इसी प्रकार निजी संडासों की सफाई के लिए, सार्वजनिक प्रकाश की व्यवस्था के लिए, ग्राम सभा की सीमा में आजीविका या व्यापार करने वालों पर भी ग्राम सभा अनिवार्य कर लगा सकती है।

अनिवार्य कर लगाने के पूर्व वह गाँव के सभी लोगों को इसके बारे में बतायेगी तथा पूर्व निश्चित तारीख को ग्राम सभा की बैठक में टैक्स लगाने के संकल्प को पारित किया जायेगा। ग्रामसभा द्वारा इस प्रकार लगाये गए कर पर सदस्यों द्वारा लिखित सुझाव या आपत्ति प्रस्तुत किया जा सकता है।

(2) वैकल्पिक कर

ग्रामसभा उपरोक्त अनिवार्य कर के अतिरिक्त निम्नांकित वैकल्पिक कर लगाने का भी अधिकार है।

(अ) व्यवसाय कर

इसके अन्तर्गत ऐसे जानवरों पर कर लगा सकती है जो कि सवारी गाड़ी खींचते हैं अथवा ऐसी गाड़ी खींचते हैं जिनसे बोझा ढोया जाता है। इसके अलावा दुकान, सामान बेचने वाले ऐजेंट, आढ़तिया तथा तौलने का काम करने वाले लोगों पर भी ग्रामसभा कर लगा सकती है।

(ब) सार्वजनिक सम्पत्ति के प्रयोग पर कर

यदि ग्रामसभा निम्नांकित में से कोई सुविधा उपलब्ध कराती है तो उसके लिए भी वैकल्पिक कर लगाए जा सकते हैं–

1. सराय धर्मशाला एवं विश्राम गृह के लिए कर।
2. जानवरों के वध वाले जगह के लिए कर।
3. पानी उपलब्ध कराने पर कर।
4. कूड़ा-कचरा एवं सफाई के लिए कर।

5. चारागाह में जानवर चराने के लिए कर।
6. किसी सार्वजनिक स्थान पर किसी काम के लिए बनाई गई अस्थायी संरचना पर कर।

वैकल्पिक कर लगाने की प्रक्रिया भी अनिवार्य कर के सदृश्य ही है। अनिवार्य अथवा वैकल्पिक किसी भी प्रकार का कर सामान्यतः एक अप्रैल से प्रारम्भ होकर 31 मार्च तक के लिए प्रभावी रहेगा। इसके अलावा विशेष परिस्थिति में तिमाही कर भी लगाए जा सकते हैं।

ग्राम कोष

ग्राम स्वराज व्यवस्था के अन्तर्गत सबसे महत्वपूर्ण प्रावधान ग्रामकोष की स्थापना है, नई ग्राम स्वराज व्यवस्था में प्रत्येक गांव में एक ग्रामकोष स्थापित किया जाएगा। ग्रामकोष का निर्माण गाँव के लोग मिलजुलकर करेंगे। इस ग्रामकोष का उपयोग प्रत्येक ग्राम अपनी समस्याओं के निवारण करने के लिए करेगा। ग्रामकोष की स्थापना गाँव को आत्मनिर्भर बनाने के उद्देश्य से किया गया। गाँव के विकास के लिए केन्द्र सरकार एवं प्रान्त सरकार से कुछ धन विभिन्न योजनाओं के रूप में मिलते हैं। जैसे स्वर्ण जयन्ती स्वरोजगार योजना, प्रधानमंत्री रोजगार योजना, इंदिरा आवास योजना इत्यादि का धन। इस धनराशि को उसी कार्य में खर्च किया जा सकता है जिसके लिए यह मिली है। इसी प्रकार कुछ धन ऐसा भी प्रदान होता है जिसके बारे में पहले से कुछ तय नहीं रहता है। गाँव वाले ही मिलकर तय करते हैं कि इसे किस प्रकार खर्च किया जाए। सरकार से प्राप्त समस्त धन पंचायत के ग्राम निधि के खाते में जमा होता है, ग्राम कोष इससे पृथक व्यवस्था है। ग्राम निधि केवल पंचायतों में रहती है जबकि ग्रामकोष प्रत्येक ग्राम सभा में निर्मित किया जाता है। ग्रामकोष निम्नांकित चार प्रकार के कोषों से मिलकर गठित होता है।

1. अन्नकोष,
2. श्रमकोष,
3. वस्तुकोष,
4. नगद कोष।

(1) अन्नकोष

गाँव में जिनके पास भी जमीन है वे सब मिलकर जितना तय करें उतना

अनाज अन्नकोष में जमा करेंगे। न्यूनतम प्रति व्यक्ति को जितना अनाज देना होगा यह ग्राम सभा द्वारा तय होगा। इसके अलावा भी कुछ लोग आवश्यकतानुसार अनाज दे सकते हैं। अन्नकोष से अनाज तभी निकालेगा जब ग्राम विकास समिति के अध्यक्ष की अनुमति मिलेगी। अन्नकोष से निम्नांकित कार्यों के लिए अनाज निकाला जा सकता है –

1. किसी जरूरतमंद को कर्ज के रूप में देने हेतु।
2. किसी विकास कार्य के लिए आवश्यकता पड़ने पर ग्रामसभा की अनुमति से निकाला जा सकता है।
3. आपातकालीन में 50 किग्रा. अनाज ग्राम विकास समिति का अध्यक्ष निकाल सकता है।

अन्नकोष जमा अनाज की सुरक्षा की जिम्मेदारी कोषाध्यक्ष की होती है। ग्राम सभा कम से कम जो सीमा तय कर देगी उससे अधिक अनाज होने पर ही अन्नकोष से अनाज निकाला जायेगा। उधार अनाज देने की शर्तें भी ग्रामसभा के द्वारा तय की जाएंगी। कोषाध्यक्ष कर्ज एवं वस्तु की रजिस्टर रेखेंगे और इसका मासिक विवरण ग्राम विकास समिति की बैठक में रखेंगे।

(2) श्रम कोष

ग्रामसभा स्वैच्छिक श्रमदान की भावना का विकास करके अपने संसाधन को बढ़ा सकती है। इसके लिए श्रमकोष तैयार किया जाएगा जिसमें ऐसे पुरुष एवं महिलाओं का पंजीयन होगा जो स्वेच्छा से गावँ के विकास के लिए श्रमदान करने की इच्छा रखते हैं। किंतु किसी भी व्यक्ति से जबरदस्ती श्रमदान नहीं कराया जाएगा। सभी श्रमदान की गणना मजदूरी प्रचलित दर के आधार पर किया जायगा। श्रमदान का विस्तृत लेखाजोखा कोषाध्यक्ष के द्वारा तैयार किया जायगा।

(3) वस्तुकोष

दान अथवा सहयोग के रूप में ग्रामसभा को जो वस्तुएं प्रदान होंगी उन्हें वस्तुकोष में जमा किया जाएगा। गाँव के काम के लिए जिसकी भी इच्छा हो वस्तुएं देकर योगदान कर सकता है। जैसे – कुम्हार ईंटे या खपरे देकर, कोई बाँस बल्ली देकर, कोई ट्रैक्टर ट्राली देकर या अन्य उपकरण देकर गाँव के काम में मदद कर सकता है। इस प्रकार जिसके पास भी जो वस्तु है वह वस्तुकोष में सम्मिलित कर सकता है। वस्तुकोष में मिलने वाली वस्तुओं का हिसाब भी कोषाध्यक्ष के द्वारा रखा जायेगा।

(4) नगद कोष

ग्रामसभा में नगद कोष के निर्माण करने का प्रावधान है। नगद कोष में ग्रामसभा के लिए स्वेच्छा से धन देने के लिए लोगों से तथा ग्रामसभा के अन्य आय से प्राप्त हुई धनराशि सम्मिलित की जाएगी। नगदकोष का खाता किसी राष्ट्रीकृत बैंक, सहकारी बैंक अथवा पोस्टऑफिस में बचत खाते के रूप में खोला जाएगा। नगद कोष का लेखा-जोखा भी कोषाध्यक्ष के द्वारा ही रखा जाएगा। ग्रामविकास समिति की मासिक तथा ग्रामसभा की वार्षिक बैठक में विवरण प्रस्तुत किया जाएगा।

ग्रामस्वराज व्यवस्था का मूल्यांकन

ग्रामस्वराज व्यवस्था को म0 प्र0 में लागू हुए एक वर्ष से अधिक समय व्यतीत हो चुका है किंतु अभी तक इस व्यवस्था का कोई महत्वपूर्ण एवं कारगर प्रभाव परिलक्षित नहीं हो पा रहा है। ग्रामसभा की बैठकें अभी भी अनियमित हैं। ग्रामसभा की बैठकों में कुछ स्थानों को छोड़कर दलित, दमित, शोषित एवं महिलाओं की भागीदारी आशा के अनुरूप नहीं है। गाँवों में अभी भी हर कार्य के लिए सरकार पर आश्रित होने की प्रवृत्ति निरंतर बढ़ती जा रही है। स्वार्थी और आत्मकेन्द्रित होते जा रहे समाज में व्यक्तिवाद की उदारवादी वैश्वीकरण एवं निजीकरण के प्रवृत्तियों के विकास के परिणामस्वरूप सामूहिक साविकार से संबंधित प्रवृत्तियों का निरंतर ह्रास होता जा रहा है। गांवों में स्वयं सहायता समूह गठन करके विकास की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने का प्रयास किया जा रहा है। किंतु बढ़ती हुई हताशा और निराशा समाप्त होते जा रहे हैं। परस्पर विश्वास के परिणास्वरूप इस प्रकार की गतिविधियां भी पूरे कागजी कार्यवाही तक सीमित रह गई हैं। ऐसी परिस्थितियों में मध्यप्रदेश के समस्त गांवों में ग्रामस्वराज की भावना का विकास करना अधिक से अधिक लोगों को जोड़ने के लिए प्रयास करना एवं टूटे हुए भरोसों को पुनः वापस लाना एक गंभीर चुनौती है। इस चुनौती के सामधान के लिए न केवल आर्थिक परिस्थितियों में परिवर्तन की आवश्यकता है अपितु सांस्कृतिक मूल्यों एवं लोगों के मनोवृत्तियों में परिवर्तन भी करना होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. जैकव जॉर्ज एवं डॉ. टी. जी. रमैया "डिसेन्ट्रलाइज्ड प्लानिंग इन पंचायतीराज ट्रेम (1997) एन. आई. आर. डी. हैदराबाद।
2. "रिपोर्ट ऑफ दी वर्किंग ग्रुप ऑन डिस्ट्रीक्ट प्लानिंग" सी. एच. हनुमन्ताराव प्लानिंग कमिशन भारत सरकार।
3. भारतीय संविधान (73वाँ संशोधन अधिनियम) 1992।
4. भारत शासन, योजना आयोग, सामुदायिक विकास एवं अन्य सहायक कार्यों पर 7वाँ मूल्यांकनात्मक प्रतिवेदन 1907।
5. "प्रतिवेदन सामुदायिक विकास एवं पंचायतीराज समिति" अध्यक्ष दया चौधरी 1976।
6. "डिसेन्ट्रलाइज्ड प्लानिंग" के. वी. सुन्दरम्।
7. एन. आर. एस. ए., 1986, मैनुअल आफॅ प्रोसिजर ऑफ वास्ट लैण्डस् मैपिंग यूजिंग रिमोट सेंसिंग टेकनीक, हैदराबाद।
8. सूक्ष्य स्तरीय नियोजन माइक्रो प्लानिंग, 1995, सहभागी शिक्षण केन्द्र लखनऊ, प्रिया नई दिल्ली।
9. डॉ. वी. के. थापलियाल, डीसेण्ट्रलाइज्ड प्लानिंग–कॉनसेप्ट स्कोप एण्ड मेथडोलोजी, जरनल ऑफ रूरल डेवलपमेन्ट एन, आई, आर. डी., हैदराबाद।
10. भारत शासन, योजना आयोग, योजना परियोजना समिति– "सामुदायकि परियोजना एवं राष्ट्रीय प्रसार सेवाओं पर अध्ययन दल का प्रतिवेदन" अध्यक्ष बलवंल राय मेहता, वाल्यूम प्रथम, नई दिल्ली 1957।
11. थामस इसाक– "पीपुल्स कैम्पेन फॉर डिसेन्ट्रलाइप्ड प्लानिंग इन केरला" 1999, केरला प्लानिंग बोर्ड, तिरूअनंतपुरम।
12. थामस इसाक एवं रिचर्ड डब्लू फ्रैन्क– "लोकल डेमोक्रेसी एण्ड डेपलमेन्ट" 2000, लेफ्ट वर्ड, नई दिल्ली।

Publisher & Distributors
F-10 H I Complex, Surya Nagar
Deewani Xing, M. G. Road, AGRA (U. P.)
Ph. : (0562) 2526779, 2275578
e-mail: bssharmapublishers@rediffmail.com